9.2



व ! आज समाज को बड़ी आवश्यकता है ऐसे निर्माणों की। पुत्रियों
ा वैसे भी महत्वपूर्ण समाज एवं राष्ट्र का निर्माण करना है इसमें

बाल सत्यार्थ प्रकाश

(६१)

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्यप्रेमी का विशेषांक

बाल सत्यार्थप्रकाश

अर्थात्

श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज कृत सत्यार्थप्रकाश के आधार पर

लेखक—पं० शिवशर्माजी महोपदेशक



वे थार्द ... नाम अथश को ... घाटा देने वाले पत्रों को चला रहे हैं ...का घाटा संस्थाएं भुगत रही हैं। जिन संस्थाओं ...उद्दे... ही वेदादि ग्रन्थों का प्रकाशन एवं देश विदेश में वैदिक ध...का प्रचार मात्र है वे व्यापारिक केन्द्र बन गई हैं। उनकी आ... तथाकथित नेताओं के स्वार्थ पर खर्च होने लगी है। जो ग्र... छपते हैं वे भी अशुद्ध छापने की प्रतियोगिता में सर्व प्रथम ह... रहते हैं। यही कारण है कि आर्यसमाज का प्रबुद्ध वर्ग ऐ... संस्थाओं की उपयोगिता पर भी सन्देह प्रकट करने लगा है यदि यही स्थिति रही तो भविष्य में इस आपाधापी और जा...वाद पर फलने वाले इस विष वृक्ष को उखाड़ फेंकने के लिए अगुवावर्ग कटिबद्ध हो सकता है। अस्तु, संस्थावाद से कोसों दू... रहने वाले श्री हकीम बीरूमल आर्य प्रेमी एवं उनका परिवार ह... एक व्यापक संस्था का रूप धारण कर गया है। जहां संस्थाएं अपने आरंभकालीन उद्देश्यों के प्रति उदासीन रह अन्य उपेक्षणीय कार्य कर रही हैं वहां ... अकेला

आर्यन् फार्मेसी अजमेर द्वारा प्रकाशित वैदिक सा...

सस्ता और अति सुन्दर आज ही मंगाकर एक बार अवश्य...

आर्याभिविनय— मूल्य ...

श्री डा० सूर्यदेवजी शर्मा

संध्या ज्ञान— मूल्य ...

श्री डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए०।

अथर्ववेद शतक— मूल्य ...

श्री स्वामी अच्युतानन्दजी सरस्वती

ऋग्वेदशतक— मूल्य ...

... सरस्वती



...युर्वेद शिरोमणि

श्री निर्माण करता है

है उसे निर्माणों की । पुनि...

प्रसार के कार्यों में तन-मन...

की निर्माण किया है जो आ...

भूमिका

श्री हकीम वीरूमल आर्य प्रेमी एवं उनके परिवार से देश का प्रबुद्ध समाज भली भाँति परिचित है। वैदिक सिद्धांतों में आस्था रखने वाला कोई नेता या कार्यकर्त्ता कदाचित् ही ऐसा हो जो श्री हकीम साहब के विविध कार्यों जिनमें साहित्य प्रचार, यज्ञानुष्ठान, वेद प्रचार, सद् ग्रन्थ प्रकाशन आदि उत्तम कार्यों का प्रशंसक न हो। आर्यसमाज के प्रति की गई आपकी सेवा तथा कर्त्तव्यनिष्ठा सर्वाग्रणी नहीं तो प्रथम पंक्ति में लिखे जाने योग्य अवश्य है। आर्य प्रेमी के हिन्दी तथा सिंधी मासिक पत्रों द्वारा आर्य जगत् की जो सेवाएं आप कर रहे हैं वह सर्वविदित हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर धार्मिक क्षेत्र में जो संस्थाएं मासिक, पाक्षिक या साप्ताहिक पत्र निकाल रही हैं वे घाटे में जा रही हैं। कुछ संस्थाओं के स्वयंभू नेता तो अपने नाम और यश को बढ़ाने हेतु ही घाटा देने वाले पत्रों को चला रहे हैं जिनका घाटा संस्थाएं भुगत रही हैं। जिन संस्थाओं का उद्देश्य ही वेदादि ग्रन्थों का प्रकाशन एवं देश विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार मात्र है वे व्यापारिक केन्द्र बन गई हैं। उनकी आय तथाकथित नेताओं के स्वार्थ पर खर्च होने लगी है। जो ग्रन्थ छपते हैं वे भी अशुद्ध छापने की प्रतियोगिता में सर्व प्रथम ही रहते हैं। यही कारण है कि आर्यसमाज का प्रबुद्ध वर्ग ऐसी संस्थाओं की उपयोगिता पर भी सन्देह प्रकट करने लगा है। यदि यही स्थिति रही तो भविष्य में इस आपा-धापी और जातिवाद पर फलने वाले इस विष वृक्ष को उखाड़ फैंकने के लिए भी युवावर्ग कटिबद्ध हो सकता है। अस्तु, संस्थावाद से कोसों दूर रहने वाले श्री हकीम वीरूमल आर्य प्रेमी एवं उनका परिवार ही एक व्यापक संस्था का रूप धारण कर गया है। जहां संस्थायें अपने आरंभकालीन उद्देश्यों के प्रति उदासीन रह अन्य उपेक्षणीय कार्य कर रही हैं वहां यह अकेला

परिवार उक्त संस्थाओं के उद्देश्यों की पूर्त्ति में अहर्निश लगा हुआ है। आपके जीवन का उद्देश्य ही प्रातःस्मरणीय जगद्वन्द्य श्री महर्षि दयानन्द के लगाये आर्यसमाज के पौधे को हरा भरा रखना है। इस अपने मिशन की पूर्ति के लिए आप सैंकड़ों हाथों से कमाते हैं और हजारों हाथों से लुटाते हैं। अत एव आप अपने अर्जित धन की विपुल राशि मासिकपत्रों एवं उनके विशेषाङ्कों पर खर्च करते हैं। आपने विशेषाङ्कों के रूप में लगभग २० श्रेष्ठ ग्रंथ पाठकों को समर्पित किये हैं जो पठनीय मननीय एवं संग्रहणीय हैं इस श्रेष्ठ प्रकाशन पर आर्य जगत् के प्रसिद्ध संन्यासियों महात्माओं एवं विद्वानों ने मुक्त कंठ से आपकी भूरि २ प्रशंसा की है। आपने अपने ६२वें जन्म दिवस पर महत्वपूर्ण घोषणा की है कि इस वर्ष चार महत्वपूर्ण ग्रन्थ पाठकों की सेवा में भेंट करूंगा पहला ग्रन्थ जुलाई मास के आर्य प्रेमी के विशेषाङ्क के रूप में बाल सत्यार्थप्रकाश होगा जो कई वर्षों से दुर्लभ है। दूसरा दिसम्बर ६७ तक सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश पूरा जिसकी मांग बहुत बढ़ी हुई है किन्तु अप्राप्य है, तीसरा ग्रन्थ स्व० श्री महात्मा प्रभुआश्रितजी द्वारा रचित गृहस्थ आश्रम, चौथा पूज्यपाद, श्री महात्मा आनन्दस्वामीजी द्वारा रचित घोर घने जंगल में। अतः चारों ग्रंथों के अभावों को दूर करने के लिए प्रकाशन का अपने संकल्प लिया है। ग्रंथों की उपयोगिता के लिए आपने लागत मात्र से भी कम मूल्य पर दोनों ग्रंथ जनता को देने का निश्चय प्रकट किया है सो प्रशंसनीय है। आशा है आर्य जनता अन्य प्रकाशित पूर्व ग्रंथों की भांति इन ग्रंथों का भी सम्मान करेगी और आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द की अमर कृति का स्वाध्याय कर अपने जीवन का उसके अनुसार निर्माण कर मनुष्य जीवन को सफल बनायेगी।

मदनमोहन शास्त्री, अजमेर।

मेरे दो शब्द

मेरे प्यारे भाइयो तथा बहनो !

मैं अपने जीवन के ६१ वर्ष पूर्ण कर ६२वें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूं। मैं आज अन्तर्मुख होकर अपने आप से पूछ रहा हूं कि तूने ६१ वर्ष अपने जीवन के कैसे व्यतीत किये, उत्तर मिलता है "बीती ताहि बिसारिये आगे की सुधले" परन्तु मन कहता है इस जीवन में जितने पाप या अपराध किये हैं उन पर विचार कर और उनसे बचने का प्रयत्न कर, भविष्य में अपने जीवन को उत्तम और श्रेष्ठ बनाने के लिए सर्वव्यापक प्रभु की शरण ले तो तू भवसागर से पार हो जायेगा। यही सोचकर अपने भाई और बहनों के सामने अपने दिल का हाल रख रहा हूँ।

मैं आर्यसमाज रूपी माता की सन् १९२६ से शरण में आया हूँ तब से मन और हृदय पवित्र रहा है। एक बार मन डगमगाया और पांव फिसलने ही वाले थे कि ईश्वर ने रक्षा की। अपने गाँव गये १ सप्ताह का व्रत रखा और एक लाख गायत्री का जाप किया तो मन पवित्र होगया। तब से आज तक मुझे ध्यान नहीं है कि मैंने अपने कार्यों तथा विचारों से किसी का अहित किया हो। सदैव ईश्वर से यही आराधना करता हूं कि हे प्रभो ! मेरा तथा प्राणीमात्र का भला करो जिससे संसार में कोई दुखी न रहे।

यह भी कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि मेरे पास जो भी दुखी आया उसका दुख दूर करने का मैंने पूर्ण २ प्रयत्न किया। रोगी भाई बहनों से शुल्क भी लेता हूं लेकिन यह

अवश्य ध्यान रखता हूँ कि उसकी अच्छी से अच्छी चिकित्सा हो और उस पर पूरा २ लाभ मिले जिससे उसका जीवन सफल हो सके।

आर्यसमाज को सदा मैंने माता समझा है और यह दृढ़ निश्चय किया हुआ है कि उसके कार्य को आगे बढ़ाने के लिए भर भर कर तन मन धन उसके अर्पण करता रहूं सदा चाहता हूँ कि सच्चा आर्य बनकर ऋषि की राह पर चलता हुआ अपना जीवन आदर्शमय बना सकूं जिससे दूसरों को प्रेरणा प्राप्त हो सके। मुझे पूर्ण आशा और विश्वास है कि भगवान् की कृपा से मुझे इसमें पूर्णतः सफलता प्राप्त होगी।

इस ६२वें जन्म दिवस पर मुझे जाने पहचाने कईभाइयों ने अपना हार्दिक आशीर्वाद दिया और साथ ही मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होने के लिए अपनी प्रबल शुभ कामना भी प्रकट की है उन सभी भाइयों का प्रेम पूर्वक मैं अत्यन्त आभारी हूं प्रभु से पुनः यही प्रार्थना है कि मुझे वह शक्ति और सामर्थ्य दे जिससे सभी भाइयों के दिए हुए आशीर्वाद को सफल कर सकू और ऋषि की राह में अपना जीवन अर्पित कर सकूं।

आपका भाई
हकीम बीरूमल आर्यप्रेमी

नोट—इस बालसत्यार्थप्रकाश की ५०० प्रतियाँ भगवानदेवजी आर्य बम्बई वालों ने खरीदने का आर्डर भेजा है, हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।



आर्य प्रेमी

ओ३म्

बाल सत्यार्थप्रकाश

प्रथम समुल्लास

इस समुल्लास में परमात्मा के नामों का वर्णन है । परमात्मा के अनन्त नाम हैं जिनमें से कुछ नाम मनुष्य के कल्याण के लिये नीचे लिखते हैं ।

ओ३म्—यह परमेश्वर का मुख्य और निज नाम है। जिस प्रकार मनुष्यों के राम, कृष्ण आदि नाम होते हैं, उसी प्रकार जगदीश्वर का ओ३म् नाम है।

इसमें तीन अक्षर हैं—१—अ, २—उ, ३—म् । इन तीन अक्षरों में से भी परमात्मा के अनेक नाम निकलते हैं। जैसे 'अ' से विराट अग्नि और विश्व आदि । 'उ' से हिरण्यगर्भ वायु तेज आदि । 'म' से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि। इतना और जान लेना उचित है कि यह सब नाम प्रकरण के अनुकूल और वस्तुओं के भी होते हैं। जहां उपासना का विषय हो वहां परमेश्वर का नाम समझना और अन्य व्यवहार करने को वस्तुओं में प्रकरणानुसार संसार की वस्तुओं का ग्रहण करना चाहिये। जैसे स्वामी शब्द है। जब हम "हे स्वामिन्! तू मुक्तिदाता है, हम तेरी शरण में हैं" ऐसा कहें तो समझो कि यहां परमेश्वर का अर्थ है, और जब इस प्रकार लिखा हो कि 'स्वामिन् हमारा वेतन दो, मास पूरा हो गया' तो समझो कि मनुष्य से तात्पर्य है। इसी को प्रकरणानुकूल कहते हैं।

विज्ञान स्वरूप होने से परमेश्वर को 'अग्नि' सब का पालन करने से 'मनु', परम ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र', और सदैव सर्वत्र व्यापक रहने से 'ब्रह्म' कहते है। सब जगत् को बनाने से ब्रह्मा, सबका पालन करने से विष्णु', दुष्टों को दण्ड देकर

रुलाने से 'रुद्र', मङ्गलमय और सब का कल्याणकारक होने से शिव आदि परमेश्वर के नाम हैं।

इसी प्रकार 'वायु', 'अर्यमा' और 'मित्र' आदि नाम भी प्रकरणानुकूल परमेश्वर के होते हैं। नवग्रह में जो नौ नाम रवि, सोम, मङ्गल और बुद्ध आदि हैं, वे भी उपासना विषय में परमात्मा के ही नाम हैं और ज्योतिष के विषय में तारों के नाम होते हैं।

आजकल जो बहुत से बालक और बड़े 'श्रीगणेशाय नमः', हनुमते नमः', 'भैरवाय नमः', 'वटुकाय नमः' आदि कहकर अपना पाठ या अन्य कार्य आरम्भ करते हैं, सो ठीक नहीं है क्योंकि ये सब मङ्गलाचरण वेद के विरुद्ध हैं। प्राचीन ऋषि मुनियों की रीति के अनुसार 'ओ३म्' व 'अथ' से प्रत्येक कार्य आरम्भ करना चाहिये। ऐसा ही ऋषिकृत ग्रन्थों में लिखा है, श्रीगणेशाय नमः आदि कहीं नहीं पाया जाता। बालको ! बस निराकार, दयालु और अजन्मा ईश्वर की सदैव भक्ति पूर्वक उपासना किया करो।

* प्रथम समुल्लास समाप्त *

दूसरा समुल्लास

इसमें शिक्षा का वर्णन है।

संसार में सब से उत्तम विद्वान् वह है जिसको माता, पिता और गुरु यह तीनों ही धर्मात्मा अच्छे पढ़े लिखे मिलते हैं, इसीलिये शास्त्र में कहा है कि 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' अर्थात् जब तीन उत्तम शिक्षक, एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे। तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

सब से पूर्व, बच्चा माता के गर्भ और गोद में पलता है। अतः माता बालकों को सदा उत्तम शिक्षा दिया करे जिससे सन्तान सभ्य हो। माता की गोद से उतर कर बालक पिता की ही अंगुली पकड़ता है, अतः उस समय पिता को उचित है कि वह सदा सत्य बोलना, वीरता 'धैर्य' प्रसन्नमुख आदि गुणों की प्राप्ति भले प्रकार उन्हें करावे और दूषित खेल, रोना, हँसना, लड़ाई झगड़े और शोकादि में न पड़ने दे। बालकों को भी उचित है कि वे अपने माता पितादि की सदा आज्ञा मानते रहें। पाँच वर्ष की अवस्था के उपरान्त बालक बालिकाओं को देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कराना चाहिये। देववाणी में सबोध होने के पश्चात् अन्य देशों की भाषा भी सिखाना उचित है, बालक ऐसे मन्त्र और श्लोक कण्ठ करलें जिनसे वे किसी धूर्त के फन्दे में न फंस सकें। भूत प्रेतादि के वहम को सर्वदा मिथ्या समझें, क्योंकि प्रत्येक प्राणी मरने के पश्चात् अपने कर्मानुसार दूसरा शरीर धारण कर लेता है। बहुत से मनुष्य करोड़ों कोस दूर आकाश के तारागणों को सुख दुःख देने वाला समझते हैं, यह भी अज्ञान है। तारागण-प्रकाश और गर्मी के अतिरिक्त और किसी प्रकार का (ज्ञानपूर्वक) सुख दुःख नहीं दे सकते अतः इस भ्रम में भी न पड़ना चाहिये। जड़ वस्तु किसी को भी ज्ञानपूर्वक सुख व दुःख नहीं दे सकती। संसार में सुख व दुःख भोगना प्राणियों के अच्छे बुरे कर्मों का फल है, तारागण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। बालकों को इसी प्रकार की सुशिक्षा अपने माता-पिता और गुरु आदि से सदैव ग्रहण करते रहना चाहिये।

बालकों को यह भी उचित है कि वे अपने ब्रह्मचर्य की

सदैव रक्षा करते रहें। विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान और उनकी चर्चा कभी न करें। घर से पैसा लेकर उससे सिगरेट और चाट आदि हानिकारक वस्तुओं के खरीदने में खर्च कर डालना बड़ी भारी भूल है। सिगरेट कोमल मस्तिष्क पर ऐसा विषैला प्रभाव डालती है कि बच्चे शीघ्र ही स्मरण शक्ति खो बैठते हैं, यही कारण है कि चुरट पीने वाले बहुत से ल ; के अत्यन्त परिश्रम करने पर भी भले प्रकार पाठ याद नहीं कर पाते और परीक्षा (इम्तहान) में अनुत्तीर्ण (फेल) हो जाते हैं। अतः चुरट आदि नशीले पदार्थ किसी को सेवन न करने चाहिये। बाजारों में बिकने वाली खट्टी चरपरी और तीखी वस्तु कभी न खानी चाहिये, ये भी ब्रह्मचर्य में बाधक होती हैं। बालको! जो पैसा माता पिता से प्राप्त करो उससे बुद्धिवर्धक और पुष्टिकारक चीज़ें मोल लेकर खाओ जिससे तुम्हारे बल की वृद्धि और ब्रह्मचर्य की रक्षा हो। वीर्य की रक्षा न करने से तुम दुर्बल, निस्तेज तथा निर्बुद्धि हो जाओगे। जब तक माता, पिता गृह का कार्य्य करके तुम को पढ़ाने लिखाने के लिए मौजूद हैं, तब तक तुमको बड़े परिश्रम से विद्या पढ़नी चाहिये नहीं तो पीछे पछताओगे।

जन्म से ५ वें वर्ष तक बालकों को माता और ६ से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा दे। नवें वर्ष से प्रारम्भ में द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) अपने अपने सन्तानों का उपनयन कराके तथा शूद्रादि वर्ण उपनयन (यज्ञोपवीत) किये बिना ही विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें। बालकों को उचित है कि चोरी, जारी आलस्य, प्रमाद, नशीले पदार्थ, झूठ बोलना हिंसा और द्वेष को त्याग दें। कभी प्रतिज्ञा भङ्ग (वायदा

खिलाफ़ी) न करें। यह महा पाप है जो कोई तुम्हारे साथ उपकार करे उसके उपकार को मानते रहो। कृतघ्न न बनो। किसी के उपकार को न मानना 'कृतघ्नता' कहाती है। इससे सदैव बचो। जितना बोलना उचित है उससे कम व अधिक मत बोलो। बड़ों को मान पूर्वक 'नमस्ते' कहकर उन्हें ऊँचे आसन पर बिठाओ। सभा में ऐसे स्थान पर बैठो जो तुम्हारी योग्यता के अनुकूल हो। यदि अपनी योग्यता से अधिक ऊँचे स्थान पर बैठोगे तो उठा दिये जाओगे, और तुम्हारा अपमान होगा। अपने गुरु आदि के उत्तम उत्तम गुण ग्रहण करो और बुरे बुरे छोड़ दो। मनु महाराज की चार बातें सदैव याद रक्खो, अर्थात् नीचे ऊँचे स्थान को देखकर चलना, वस्त्र से छान कर जल पीना, सत्य से पवित्र करके वचन बोलना और मन से विचार कर आचरण करना। मनु महाराज यह भी कहते हैं कि बिना जाने हुये जल में न घुसो ऐसा करने से डूबने और जल जन्तु से कष्ट पाने का भय रहता है।

॥ दूसरा समुल्लास समाप्त ॥

तीसरा समुल्लास

इसमें पढ़ने और पढ़ाने की विधि है।

सन्तानों को उत्तम गुण कर्म और स्वभाव रूप, सच्चे आभूषणों को धारण करना, माता पिता आचार्य्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने चाँदी के गहनों से मनुष्य का आत्मा सुभूषित नहीं होता। गहनों के पहिनने से लोभवश प्रायः बालकों की हत्या भी हो जाती है। जब बालक ८ वर्ष का हो, तभी लड़कों को लड़कों की और कन्याओं को कन्यापाठशाला में पढ़ने के लिये भेज देना चाहिये। शिक्षा सदैव सदाचारी स्त्री

पुरुषों से दिलानी चाहिये। माता पिता और अध्यापक अपने पुत्र पुत्रियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश करें वह मन्त्र यह है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। यजु० अ० ३६ मं० ३॥

अर्थ—जो सब जगत् के जीवन का आधार प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस परमेश्वर का नाम 'भूः' है। वह स्वयं सब दुखों से रहित है। औरों के दुखों को छुड़ाने वाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। वह जगत् में व्यापक होके सब को धारण कर रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम स्वः' है। ये तीन महाव्याहृति कहाती हैं इसकी विशेष व्याख्या तैत्तिरीय शाखा में है।

मन्त्रार्थ—(सवितुः)। जो सब जगत् उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य्य का दाता है। (देवस्य) जो सब सुखों का देने वाला और जिसकी प्राप्ति की सब कामना करते हैं। उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) शुद्ध स्वरूप है। (तत्) उसे हम लोग (धीमहि) धारण करें। किस प्रयोजन के लिये? कि (यः) जो परमात्मा (नः) हमारे (धियो) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) बुरे कर्म्मों से हटाकर अच्छे कर्मों में लगावे। इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो आचमन, प्राणायामादि क्रिया सिखलावे। स्नान करने से बाहर के अङ्ग शुद्ध और आरोग्य रहते हैं यह मनु महाराज का वचन है। स्नान के उपरान्त एकान्त स्थान में बैठ कर आचमन आदि करके संध्या करे। संध्या करते समय न्यून से न्यून तीन प्राणायाम करे। प्राणायाम से मानसिक अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश

होता है, यह शास्त्र का वचन है पुनः परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना के मन्त्र पढ़े। इस सारी क्रिया को सन्ध्योपासना कहते हैं।

संध्या के बाद हवन करना चाहिये। हवन से जलवायु की शुद्धि होकर अन्नादि पवित्र उत्पन्न होते हैं। शुद्ध अन्न के भोजन से बुद्धि शुद्ध होती है बुद्धि के शुद्ध होने से स्मृति (याददाश्त) बढ़ती है। हवन करने का समय सूर्य्य निकलने के पश्चात् और सूर्य्य छिपने के पूर्व है। हवन के पदार्थ सुगन्धित जैसे चन्दन केशर आदि पुष्टिकारक जैसे घृत आदि रोगनाशक जैसे गिलोय जावित्री आदि और मिष्ट जैसे शर्करा (खाँड) होने चाहियें। ये सब वस्तुएं किसी मिट्टी व धातु के कुण्ड में मन्त्र पढ़ कर और अन्त में 'स्वाहा' बोलकर जलती हुई अग्नि में डालनी चाहिये। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोलें विपरीत नहीं। प्रत्येक मनुष्य को सोलह सोलह आहुतियें देनी चाहियें। प्रत्येक आहुति का न्यून से न्यून छः छः माशे का परिमाण होवे और जो अधिक हो तो और भी अच्छा है यदि कोई मनुष्य अत्यन्त निर्धन हो तो उचित है कि वह केवल समिधाओं से ही हवन करे। धनी होने पर घृतादि से करने . . ग ब्रह्मचारी भी समिधाओं से हवन करले।

प्रश्नोत्तर।

शिष्य—श्री गुरु जी! भला घी को अग्नि में न डाल कर खा लिया करें तो शरीर का कितना लाभ हो?

गुरुजी—यह तुम्हारा विचार ठीक नहीं क्योंकि यदि एक छटाँक घी एक मनुष्य खाले तो केवल उसको ही लाभ हो सकता है, परन्तु एक छटाँक घी यदि अग्नि में डाल दें तो

वह सूक्ष्म होकर और वायु में मिलकर न जाने कितने मनुष्यों को लाभ पहुंचावेगा।

इन दोनों कामों में से पूर्व को (संध्या) ब्रह्मयज्ञ और दूसरे को (अग्निहोत्र) देवयज्ञ कहते हैं। ब्रह्मचर्य्याश्रम में केवल ये दो ही यज्ञ किये जाते हैं। परन्तु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम में पाँचों यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ अतिथि-यज्ञ, तथा भूतयज्ञ (बलिवैश्व) करने चाहियें।

ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है उत्तम मध्यम और कनिष्ठ। बारह, बारह २ वर्षों में अर्थात् ३६ वर्षों में तीनों विद्याओं को वेदों में से प्रत्येक को साङ्गोपाङ्ग पढ़कर और ८ वर्ष पूर्व के इस प्रकार जो ४८ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहता है वह उत्तम कहाता है। दो वेद पढ़कर जो ३६ वर्ष में पढ़ना समाप्त कर दे वह मध्यम और १ वेद पढ़ने वाला जो २५ वर्ष में विद्या पढ़ना छोड़े वह कनिष्ठ ब्रह्मचारी कहाता है। इन तीनों ब्रह्मचारियों को क्रम से आदित्य रुद्र और वसु ब्रह्मचारी कहते हैं।

इस शरीर की चार अवस्था हैं। १-(वृद्धि, जो १६ वें वर्ष तक कहाती है। इसमें सब धातुओं की वृद्धि होती है। २-(यौवन) यह २५ वर्ष पर्य्यन्त कहाती है। इस में स्त्री और पुरुष, युवती और युवा कहाते हैं। ३-(सम्पूर्णता) यह चालीसवें तक होती है। इसमें सम्पूर्ण धातुओं की पुष्टि होती है। ४-(किञ्चित्परिहाणि) यह अवस्था ४० वें वर्ष के पश्चात् आती है। इसमें सब धातु क्रमशः घटने लगते हैं।

हे बालको ! तुमको प्रत्येक समय में यम और नियमों का पालन करते रहना चाहिये। यह (यम) पांच हैं-(अहिंसा वैर)

---

*चार वेद हैं, छः अङ्ग हैं यथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द। छः शास्त्रों को उपाङ्ग कहते हैं।

त्याग, (सत्य), (अस्तेय) मन, वाणी, कर्म से चोरी का त्याग (ब्रह्मचर्य) वीर्य्यरक्षा, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता छोड़ कर विषयासक्ति से रहित होना। पांच नियम यह हैं— (शौच) स्नानादि से पवित्र रहना, (सन्तोष) पुरुषार्थ कर कर्म करके हानि लाभ में हर्ष शोक न करना, (तप) कष्ट सह कर भी धर्म करना, (स्वाध्याय) पढ़ना, और (ईश्वर प्रणिधान) अपनी आत्मा को ईश्वर के अर्पण करना। सारी विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य धारण करने वैदिक कर्मोपासना का ज्ञान पाक्षिक (प्रत्येक १५ वें दिन) यज्ञ करने, पञ्चयज्ञ करने अग्निष्टोम आदि यज्ञ करने से मनुष्य का शरीर ब्रह्मप्राप्ति के योग्य होता है, यह मनु का वचन है। जो बालक नम्र और सुशील रहकर विद्या की वृद्धि और वृद्धों की सेवा करता है उसकी आयु विद्या कीर्ति और बल यह चारों बढ़ते हैं। जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर अन्य पुस्तकों के पढ़ने में श्रम करता है, वह कुटुम्ब सहित शूद्रता को प्राप्त हो जाता है।

विद्या पढ़ने वालों को भी मद्य (शराब व अन्य नशीले पदार्थ), मांस, खटाई, गन्धमाला और इसी प्रकार की शौक की चीजें, स्त्रियों का ध्यान, नाचना, गाना बजाना और सवारी आदि त्याग देना चाहिये। इसमें से मद्य मांस तो प्रत्येक पुरुष व स्त्री को छोड़ देना चाहिये। विद्यार्थियों को कभी प्रमादवश (गफलत में) पढ़ना न छोड़ना न चाहिये। सत्य की परीक्षा पांच प्रकार से होती है। १—जो ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो। २—जो सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, जैसे मनुष्य के दश शिर और बीस भुजा न होकर केवल एक शिर और दो भुजायें होना आदि। ३—आप्तवचन अर्थात् किसी पक्षपात रहित विद्वान् का कथन व उपदेश। ४—अपने

आत्मा की पवित्रता और विद्या के अनुकूल हो, जैसे अपने आत्मा को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही अन्यों के लिये भी समझना चाहिये। ५–आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इन सब के लक्षण न्याय शास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय में लिखे हैं।

अब पढ़ने पढ़ाने की विधि लिखी जाती है।

बालकों को प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा पढ़ानी चाहिये जिससे अक्षरों का स्थान और प्रयोग शुद्ध शुद्ध विदित हो जावे। पुनः अष्टाध्यायी के सूत्र, पदच्छेद और समास सहित सिखावें और कण्ठ करावें।

अष्टाध्यायी के पश्चात् अर्थ सहित धातु पाठ और उणादि-कोष पढावें। व्याकरण को पढ़कर यास्क मुनि कृत निघण्टु और निरुक्त छः या आठ महीने में सार्थक पढ़ें पढ़ावें। लघु कौमुदी और सारस्वतादि तथा अमरकोषादि पढ़ने में व्यर्थ समय न गवावें। तदनन्तर चार मास में पिंगलाचार्य कृत छन्दोग्रन्थ जिससे लौकिक और वैदिक छन्दों का ज्ञान हो, पढ़ावें। एक वर्ष के भीतर वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के अच्छे अच्छे प्रकरण पढ़ें पढ़ावें। तदनन्तर छहों शास्त्र अर्थात् पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त जहाँ तक हो सके ऋषिकृत भाष्य सहित अथवा उत्तम विद्वानों की व्याख्या सहित दो वर्ष के अन्दर पढ़ावें। वेदान्त पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक को पढ़ावें। पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ के सहित चारों वेदों के स्वर शब्द अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया

सहित पढ़ाना योग्य है। इस प्रकार सब वेदों को पढ़ाकर आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मुनि प्रणीत वैद्यक शास्त्र हैं, उनको अर्थ और क्रिया आदि सहित चार वर्ष में पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् राज सम्बन्धी काम जिसको आज कल कवायद कहते हैं पढ़ावें ऐसी व्यूह रचना का कार्य्य राजपुरुष सीखें जिससे प्रजा का पालन यथावत् कर सकें। इस विद्या को तीन वर्ष में सीखलें। इसके अनन्तर गान्धर्व वेद जिसमें नारद संहिता आदि ग्रन्थ हैं। (जिनमें मुख्यतया सामवेद गान हैं) सीखें पुनः अर्थवेद जिससे पृथिवी से लेकर आकाश तक के पदार्थों का ज्ञान होता है दो वर्ष में सीखें। पश्चात् ज्योतिर्विद्या जिसमें सूर्य्य सिद्धान्त आदि हैं, जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल खगोल और भूगर्भ विद्या है, दो वर्ष में सीख लें। पढ़ने पढ़ाने वाले ऐसा यत्न करें जिससे २० व २१ वर्ष के भीतर ही सम्पूर्ण विद्या पढ़ व पढ़ा सकें।

परमेश्वर कहता है कि मेरी सदा कल्याणमयी वाणी वेद ब्राह्मण क्षत्रिय. वैश्य शूद्र और अतिशूद्र के लिये भी है इस लिए वेदों से सभी को लाभ उठाना उचित है। स्त्री जाति को वेदादि सत्यशास्त्र अवश्य पढ़ने चाहिये। प्राचीन काल में गार्गी सुलभा आदि बड़ी बड़ी विदुषी स्त्रियां हो चुकी हैं। यह विद्या दान सब दानों से उत्तम है। अतः गुरुकुल और पाठशालाओं में दान देकर सब ही को अक्षय पुण्य का भागी बनना चाहिये। ॥ तीसरा समुल्लास समाप्त ॥

चौथा समुल्लास

इसमें समावर्त्तन, विवाह और गृहस्थाश्रम का वर्णन है।

भले प्रकार ब्रह्मचर्य्य रख कर, अपने गुरु की आज्ञा पालन करता हुआ, धर्म-चारों वेद, तीन वा दो अथवा एक

वेद को अङ्ग तथा उपाङ्ग सहित पढ़कर पुरुष व स्त्री गृहस्थाश्रम में जावें, यह मनु महाराज की वेदानुकूल आज्ञा है। विवाह सम्बन्ध दूर देश में होना अच्छा है। अपने ही गोत्र में और माता की छः पीढ़ियों तक विवाह नहीं होना चाहिये। इसमें अनेक दोष हैं, जिन वर और कन्या का विवाह होवे, वे परस्पर में गुण, कर्म और स्वभाव में समानता रखने वाले हों। ऐसा करने से गृहस्थाश्रम शान्तिधाम बना रहता है। विवाह के समय कन्या की आयु न्यून से न्यून १६ वर्ष की और वर की २५ वर्ष की होनी चाहिये, अधिक हो तो और भी अच्छा है। वृद्धावस्था में स्त्री पुरुषों का विवाह नहीं करना चाहिये।

हमारे पूर्वज स्वयंवर को बहुत अच्छा समझते थे। जैसा कि महारानी सीताजी का श्री रामचन्द्रजी के साथ और द्रौपदी का अर्जुन के साथ हुआ था इसी प्रकार और भी बहुत से स्वयंवर हो चुके हैं।

वर्ण व्यवस्था।

यह रीति शास्त्रानुकूल है कि ब्राह्मणी से उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मण हो। परन्तु बड़ा होकर यदि अपना कर्म न करे तो अन्य वर्ण वाला हो जाता है, जैसे बिना जाने बूझे कुल में पैदा "जाबालि" गुण, कर्म और स्वभावानुसार ब्राह्मण कहलाया था। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गये। मातङ्गऋषि चाण्डाल से ब्राह्मण बन गए। अब भी प्रायः ऐसा होता है। सैकड़ों हिन्दू, ईसाई और मुसलमान हो जाते हैं और सैकड़ों मुसलमानादि आर्य्य बन जाते हैं। इसी लिए गुण कर्म स्वभाव से वर्ण मानना चाहिए।

हमारे पूर्व पुरुषाओं ने जो सत्कर्म किये थे हमें भी उनको करना चाहिये यही सनातनधर्म कहाता है। दो चार पीढ़ियों

में (वेद विरुद्ध) कुल व जाति में जो कोई खोटा कर्म प्रचलित हो गया है उसको सनातन धर्म न मानकर नवीन धर्म समझना चाहिए। सनातन धर्म वेद प्रतिपादित धर्म है जिसको आर्य्य मानते हैं। इस मनुष्य समुदाय रूप पुरुष के मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, जंघायें वैश्य और पांव शूद्र हैं। जो लोग यह कहते हैं कि परमेश्वर के मुख से ब्राह्मण, बाहु आदि से क्षत्रिय और जंघा से वैश्य निकले हैं। यह ठीक नहीं। क्योंकि परमेश्वर हमारे समान मुखादि वाला नहीं है और न उसका कोई आकार है।

इसका सच्चा अर्थ यह है कि जिस प्रकार सारे शरीर में मुख इस कारण श्रेष्ठ है कि उसमें बोलने की शक्ति और दूसरों को उपदेश देने तथा विद्या पढ़ने आदि की सामर्थ्य है, उसी प्रकार मुख समान ब्राह्मण को भी सत्योपदेष्टा और विद्या पढ़ने पढ़ाने वाला होना चाहिए। बाहु में सारे शरीर की रक्षा करने की शक्ति है, अतः क्षत्रिय वह जो निर्बलों की रक्षा करे। वैश्य उदर और जंघाओं के समान व्यापार के योग्य पदार्थों का संग्रह करके देश देश में भ्रमण करे और शूद्र पैरों के समान द्विजातियों की सेवा करे।

ब्राह्मण के छः कर्म हैं–विद्या पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और दान लेना।

क्षत्रियों के पांच कर्म हैं–प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना और विषयों में न फंसना।

वैश्यों के छः कर्म हैं–पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, विद्या पढ़ना, व्यापार और सूद लेना।

शूद्रों का कर्म केवल तीनों वर्णों की सेवा करना है। द्विजों के नित्य कर्म प्रातः काल उठकर शौचादि से निबट कर संध्या

करना, घृतादि से हवन करना, जीवित माता पिता की सेवा करना, अतिथि जिसके आने की नियत तिथि न हो, उसकी यथा योग्य सेवा करना और बलिवैश्वदेव करना हैं ये पाँच कर्म सायं प्रातः दोनों समय करने के हैं। इनको ही पञ्चमहायज्ञ कहते हैं।

वेदों के पांच आदेश

अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मेविचष्टे सवितायमर्यः ॥
ऋ० १०।३४।१३

१—जुआ मत खेल। २—कृषि कर।
३—अपने धन पर ही सन्तोष कर। ४—गौओं का पालन कर।
५—पत्नी व्रत रह।

हवन के लाभ।

जो हवन प्रातः काल किया जाता है उसकी सुगन्ध से संध्या तक गृह का वायु शुद्ध रहता है और संध्या के किए हवन से प्रातः काल तक हवा साफ रहती है।

त्रिकाल संध्या ठीक नहीं क्योंकि सन्धि केवल सायं प्रातः दो ही कालों में होती है। मनु महाराज भी दो ही काल की संध्या बताते हैं।

चौथा समुल्लास समाप्त हुआ।

पाँचवाँ समुल्लास।

इसमें वानप्रस्थ और संन्यास की विधि है।

शास्त्रों में लिखा है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थी बने, गृहस्थाश्रम को समाप्त करके वनी अर्थात् वानप्रस्थ

बनें, वानप्रस्थ के उपरान्त संन्यास ग्रहण करें, अथवा जिस दिन पूर्ण वैराग्य हो जावे उसी दिन संन्यास ले लें। आज कल जो छोटे छोटे बालक भी सिर घुटा कर, कपड़े रङ्ग कर और कमण्डल हाथ में लिये फिरते हैं वे सर्वथा वेद विरुद्ध कार्य करने वाले हैं। ऐसे नामधारी साधुओं से चाहे वे किसी समाज में हों बड़ी हानि होती है। इनको साधू समझना भूल है।

वानप्रस्थ को उचित है कि अग्नि में होम करके दीक्षित हो तथा व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त करे, नाना प्रकार की तपश्चर्या करके सत्संग योगाभ्यास और सुविचार द्वारा ज्ञान और पवित्रता को प्राप्त करे। पश्चात् जब संन्यास की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्र के पास भेज संन्यासी बन जावे।

वानप्रस्थाश्रम के उपरान्त संन्यासाश्रम है, इस आश्रम में मनुष्य को उचित है कि स्त्री, पुत्र, धन और यश की इच्छा छोड़ केवल ब्रह्म प्राप्ति के साधन कर संन्यासी होकर संसार की अविद्या को दूर करे और वेद विद्या द्वारा संसार का दुःख दूर करने का यत्न करता रहे। क्योंकि संन्यास शब्द का अर्थ ब्रह्म की प्राप्ति और दुष्ट कर्मों का त्याग है। बहुत से आलसी इसलिए कपड़े रङ्ग लेते हैं कि उनको कोई कर्म न करना पड़े ऐसा करने से संन्यास के वास्तविक अर्थ का लोप हो गया। संन्यासी को उचित है कि ब्रह्म प्राप्ति और परोपकार को मुख्य धर्म समझे। गृहस्थों को भी उचित है कि परोपकारी विद्वान् और धर्मात्मा संन्यासियों की यथा शक्ति धनादि से सहायता किया करें। यह मनुजी की आज्ञा है।

पाचवां समुल्लास समाप्त हुआ।

छठा समुल्लास

इसमें राज प्रकरण है।

ईश्वर उपदेश देता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर, राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभायें अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्यसभा व राजार्य सभा स्थापित करें और अनेक प्रकार के मनुष्यादि प्राणियों को विद्या शिक्षा और धन से अलंकृत करें।

राजा ही दण्ड देने हारा और न्याय करने वाला है, अतः प्रजा को उचित है कि वह राजा की आज्ञा का पालन करे। जिस देश में राजा से प्रजा और प्रजा से राजा प्रसन्न रहता है, उसे बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिये। हमें प्रति क्षण राजा को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। हमारा वैदिक धर्म हमको यही आज्ञा देता है। जिस देश में ऐसा न होकर राजा प्रजा में वैमनस्य रहता है वह देश आपत्तियों से कभी पीछा नहीं छुड़ा सकता। यदि राजा न हो तो प्रजा को नियम में कौन चलावे। यदि प्रजा न हो तो वह राजा किसका बने? अतः राजा प्रजा का नित्य सम्बन्ध है।

छठा समुल्लास समाप्त।

सातवाँ समुल्लास

इसमें ईश्वर और वेद विषय का वर्णन है।

वेद भगवान् उपदेश करते हैं कि ईश्वर एक है अतः उस एक परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिये। वेद में अनेक देवता लिखने का अभिप्राय यह है कि दिव्यगुण से युक्त होने

से देवता कहाते हैं। जैसे पृथिवी सूर्यादि। परन्तु पृथिवी आदि को कहीं उपासनीय नहीं बताया। जो लोग देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण कहते हैं, वे भूल पर हैं। ईश्वर देवों का भी देव अतएव महादेव है वेदों में ३३ देवता लिखे हैं, अर्थात् ८ वसु ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ विजली और १ प्रजापति।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र इस कारण वसु कहलाते हैं कि यह सब सृष्टि के निवास स्थान हैं। प्राण, अपान, व्यान्, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह इसलिये रुद्र कहाते हैं क्योंकि इनके निकलने के समय सारा परिवार रोता है। संवत्सर के १२ महीने आदित्य इसलिये हैं क्योंकि सब ही आयु को ले जाते हैं। विजली का नाम इन्द्र इसलिये है कि वह परमेश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति इसलिये कहते हैं कि उससे जल-वायु की शुद्धि और नाना प्रकार से विद्वानों का सत्कार होता है हिरण्यगर्भ भी परमेश्वर का नाम है क्योंकि जितने तेजोमय पदार्थ हैं वे सब उसमें रहते और भ्रमण करते हैं। जो मनुष्य यह कहते हैं कि में ईश्वर प्रत्यक्षादि प्रमाण नहीं हैं वे भूल में हैं। शास्त्र कहता है कि श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण (नाक) और मन का शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य आदि विषयों के साथ सम्बन्ध होने से जो निश्चयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मनसे गुणों का प्रत्यक्ष होता है अथवा गुणी का? जैसे त्वचा से वायु के गुण स्पर्श का ग्रहण होता है साक्षात् वायु का नहीं इसी प्रकार और भी समझ लेना। परमेश्वर के रचनारूप गुण का ही प्रत्यक्ष हो सकता है, निराकर निर्गुण परमात्मा का नहीं। ईश्वर सर्वत्र

व्यापक है। यदि ऐसा न होता तो वह सारी सृष्टि की रचना और उसका पालन कैसे कर सकता था? ईश्वर दयालु और न्यायकारी भी है जैसे राजा अपराधी को कारागार में दण्ड भुगतवाने के लिए न्याय करता है तथा भोजन वस्त्र दवा आदि देकर दया दिखाता है, उसी प्रकार परमात्मा ने जीवों को कर्मानुसार नाना योनि रूप कारागार देकर न्याय किया है और अमूल्य जल वायु प्रदान कर बड़ी भारी दया की है। क्या चोरों को दण्ड देकर धर्मात्माओं की रक्षा करना न्याय नहीं! अपराधियों को दण्ड देना भी उन अपराधियों और अन्य धर्मात्माओं पर दया करना है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् इसलिये कहाता है कि वह अपने कार्य्य अर्थात् उत्पत्ति, पालन और प्रलय आदि करने में और जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किसी से किञ्चित् भी सहायता नहीं लेता है। वह अपने सामर्थ्य से ही सब काम पूर्ण कर लेता है। लोग सर्व शक्तिमान् का अर्थ जो चाहे सो करे, ऐसा समझते हैं। उनसे पूछना चाहिये कि क्या ईश्वर मर सकता है? पाप कर सकता है? अपने समान कोई दूसरा ईश्वर बना सकता है? यदि नहीं तो तुम्हारा सर्वशक्तिमान् कैसा? इससे हमने जो अर्थ किये हैं वे ही ठीक हैं।

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अवश्य करनी चाहिये क्योंकि उसकी स्तुति, करने से उसमें प्रीति उत्पन्न होती है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म स्वभाव का सुधार होता है। प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता मिलना सम्भव है। उपासना द्वारा उससे मेल और उसका साक्षात्कार होता है। यह शङ्का कि जब ईश्वर के श्रोत्र नेत्र आदि इन्द्रियां हैं ही नहीं तो फिर वह इन्द्रियों का

काम कैसे करता होगा ? क्योंकि शास्त्र कहता है कि परमात्मा विना हाथों के सारे संसार चक्र को ग्रहण कर रहा है, विना पावों के सब में व्यापक है और विना मुख के वेदों का वक्ता है। गो० तुलसीदासजी भी यह कहते हैं:—

'बिन पग चले सुने बिन काना।
कर बिन कर्म करे विध नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिन वाणी वक्ता बड़ योगी॥'

तीन पदार्थ अनादि हैं, ईश्वर, जीव और प्रकृति। ईश्वर सदैव रहने वाला, चैतन्य और आनन्दमय है। जीव सदैव रहने वाला और चैतन्य है, इसको आनन्द ब्रह्म के योग से प्राप्त होता है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र पर फल भोगने में परतन्त्र है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान यह शरीर सहित आत्मा के गुण हैं। प्रकृति सदैव रहने वाली और जड़ है। इसमें चेतना नहीं है, जगत् की यही उपादान कारण है। उपादान कारण उसे कहते हैं जैसे घड़े के लिए मिट्टी है। परमेश्वर निमित्त कारण है जैसे घड़े के लिये कुम्हार। यदि परमेश्वर ही जगत् का उपादान कारण भी हो तो सारा संसार चैतन्य हो जावे और परमेश्वर भी कार्य होकर स्थूल और जड़ बन जावे। परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता, यदि ऐसा करे तो वह एक देशी होकर अल्पज्ञ हो जावे, परिणामी होकर अनित्य हो जावे, बन्धन में आकर जीव के समान काम, भोग में लिप्त हो जावे। वह शरीर धारण किये बिना ही सारे जगत् की रचना और प्रलय करता है। उसे रावण और कंसादि के

मारने के लिये शरीर धारण करने की अवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि जो उत्पन्न होता है वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है, यह ईश्वर की व्यवस्था है। हमारी तरह ईश्वर के लिये तीन काल नहीं है। किन्तु हम अपने व्यवहार के अनुकुल तीन कालों को मानते हैं। आशय यह है कि नित्य पदार्थों में काल का अभाव और अनित्यों में उनका व्यवहार होता है। हमारा भूत-कालिक व्यवहार-जैसे ईश्वर ने आदि सृष्टि कैसे रची ?-बड़े-बड़े मनुष्य पृथ्वी द्वारा कैसे उत्पन्न किये ? वर्त्तमान का व्यवहार-जैसे किसी प्रकार प्राकृत वस्तुओं में शनैः शनैः अन्तर हो रहा है। अनेक सौर्य्य-जगत् किस प्रकार भ्रमण कर रहे हैं ? भविष्यत् का व्यवहार-जैसे प्रलय किस प्रकार होगी ! प्रलय अवस्था में प्रकृति कैसी हो जावेगी आदि-आदि। ईश्वर सर्वव्यापक है और जीव शरीर के भीतर भी एक देशी है। यदि जीव भी सर्वव्यापक होता तो जागृत स्वप्न सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता था। इसलिये जीव स्वरूप से अल्प अर्थात् अणु है। एक स्थान में दो वस्तु कैसे रह सकती हैं। इस शंका का उत्तर यह है कि इस प्रकार का नियम समान धर्म रखने वालों में होता है पृथक् गुण रखने वालों में नहीं होता। जैसे अग्नि सूक्ष्म होने से लोहे में समा जाती है वैसे ही आकाश सब से सूक्ष्म होने से सब में मौजूद है। परमेश्वर सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म होने से आकाश में भी व्यापक है ये सब पदार्थ एक ही स्थान में प्रत्यक्षतया रहते हैं। कुछ मनुष्यों का यह विचार भी ठीक नहीं है कि जो कुछ है वह ब्रह्म ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। क्योंकि महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयी! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से

भिन्न है, जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता, वह परमात्मा तेरे में व्यापक है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में कहे हुए इस वचन से यह तो सिद्ध हो गया कि ईश्वर से जीव भिन्न है। अब रहे उपनिषद् के वे वाक्य जिनसे जीव ईश्वर की एकता सिद्ध की जाती है सो उनका आशय यह है कि समाधि अवस्था में योगी केवल ब्रह्म-चिन्तन करता हुआ कहता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं। उसको ब्रह्म के अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं, वह तो ब्रह्म के अतिरिक्त किसी को देखता ही नहीं, अपने को भी भूल जाता है, इसीलिए कहता है कि 'मैं ब्रह्म हूं अर्थात् अब मैंने ब्रह्मप्राप्ति कर ली, मुझ में और ब्रह्म में कुछ अन्तर (फासला) नहीं है। 'यह' और 'वह' शब्द वहां काम में लाये जाते हैं जहां कुछ अन्तर हो और जहां अन्तर ही नहीं वहां अँगुली से 'यह' 'वह' कह कर किसका निर्देश करे। यही याज्ञवल्क्यजी के कहने का आशय है। उपनिषदों (ब्रह्म विद्या) में ब्रह्म प्रधान है, अतः उनमें सृष्टि के आदि में ब्रह्म को ही प्रधानता दी है। यदि जीव भी ईश्वर है तो ईश्वर में इतने दोष आवेंगे :—

१—वह एक देशी हो जावेगा।

२—एक देशी हो अल्पज्ञ और बन्धन में पड़ कर कर्म फल का भोक्ता होगा।

३—सृष्टि की आदि में किस-किस कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने वाली योनियां मिलीं जब कि ब्रह्म निष्कर्म है।

४—अविद्यारूप अन्तःकरण जहां-जहां जावेगा वहां-वहां के ब्रह्म को अज्ञानी बना देगा।

और भी इसी प्रकार के बहुत से दोष हैं जो विस्तार भय से नहीं लिखे जाते।

अब इसके आगे वेद विषय लिखते हैं।

हे बालको ! शास्त्र कहते हैं कि उस परमेश्वर से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं। सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया। शतपथकार और मनु महाराज दोनों ही ऐसा कहते हैं। ये ही चारों आत्मायें सब मुक्तात्माओं में श्रेष्ठ थीं वेद किसी देश-भाषा में न भेजकर संस्कृत में इस कारण भेजे कि ईश्वर पर पक्षपात का दोष न लगे। यदि उन्हें किसी देश-भाषा में भेजता तो वे उस देशवासियों को सरल और अन्यों को कठिन होते। जैसे पृथिवी, जल और वायु आदि सब देशों के लिये समान हैं वैसे ही वेद-भाषा भी सबको समान रीति से दी है। यदि परमात्मा अपनी अपार दया से हमको वेदों का ज्ञान न देता तो सारा संसार जंगलियों के समान रहता क्योंकि यह देखा जाता है कि मनुष्य स्वभाव से विद्वान् नहीं है। यदि विद्वान् होता तो उन देशों में भी विद्या का प्रचार होना चाहिये था जहां अभी विद्वान् मनुष्य नहीं पहुंचे हैं।

इसी से जाना जाता है कि मनुष्य में सत्यासत्य के विवेचन का स्वाभाविक ज्ञान नहीं है। शास्त्र भी कहता है कि परमेश्वर सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए, अग्नि, वायु आदित्य और अंगिरा का भी गुरु है क्योंकि परमेश्वर नित्य है। ज्ञान दो प्रकार का है एक "स्वाभाविक" और दूसरा "नैमित्तिक"। स्वाभाविक ज्ञान पशुपक्षियों और मनुष्यों में समान है जैसे खाना, पीना, सोना,

सुखी होना दुःखी होना और सन्तान उत्पन्न करना। यह स्वाभाविक ज्ञान बिना किसी के सिखाये ही सब को प्राप्त है। इसके लिये गुरु की आवश्यकता नहीं। परन्तु नैमित्तिक ज्ञान बिना निमित्त के प्राप्त नहीं होता जैसे कि ऊपर बताया जा चुका है। शास्त्र भी ऐसा ही कहता है। यदि निमित्त के बिना भी ज्ञान की प्राप्ति हो जाती तो भेड़ियों के भटमें से निकले और गूंगे मनुष्यों में पले हुए मनुष्य भी ज्ञानी हो जाते। सृष्टि के आरम्भ में सब प्राणी ज्ञान विषय में समान थे तो ज्ञानोन्नति के तन्तु का क्या कारण हुआ? बिना कारण के कार्य्य होता नहीं तो फिर सामयिक कार्य (उन्नति) किस प्रकार हुआ? सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर की ओर से प्राप्त होना तो मेक्समूलर‡ भी मानते हैं। कई पाश्चात्य विद्वान् भी उसे स्वीकार करते हैं इन विचारों को विस्तारभय से हम यहां नहीं लिखते।

वेद सृष्टि की आदि से हैं इसलिए उनमें किसी पुरुष विशेष का नाम या इतिहास नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थ अर्थात् शतपथादि का स्वतः प्रमाण न होने का भी यही कारण है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पुरुष विशेष के नाम और इतिहास विद्यमान हैं अतएव वे चारों संहिताओं की तरह ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते। उपनिषद् वेदार्थक ज्ञाता ऋषि मुनियों के बनाये हैं और इनमें वेदों की व्याख्या हैं यही ऋषि महर्षियों का भी मत है।

सातवां समुल्लास समाप्त हुआ।

---

‡ मैक्समूलर जर्मन के निवासी और कई भाषाओं के विद्वान् थे, संस्कृत भी जानते थे। ऋग्वेद का भाष्य भी इन्होंने किया है।

आठवाँ समुल्लास

इसमें सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन है।

बालको! परमात्मा वेदों में मनुष्यों को उपदेश करते हैं कि जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय करता है, जो इस जगत् का व्यापक स्वामी है, जिसमें उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को सब जगत् प्राप्त होता है वह परमात्मा है उसको तू जान दूसरे किसी को सृष्टिकर्त्ता मत समझ। अव्यक्त प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण और परमेश्वर निमित्त कारण है। वेद बतलाता है कि जो जीव और ब्रह्म दोनों चेतनता और पालनादि गुणों में सदृश, व्याप्य और व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि है। वैसा ही अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ है, इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं उन दोनों जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोगता है। दूसरा परमात्मा कर्मों के फल को न भोगता हुआ साक्षीमात्र व्यापक है। प्रकृति का लक्षण शास्त्रकार इस प्रकार करते हैं। सत्य, शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता ये वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है उससे महत्तत्व, उस से अहङ्कार उससे पञ्चतन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दशों इन्द्रियां तथा ग्यारहवें मन की उत्पत्ति हुई। पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये २४ और २५ वां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है इनमें से प्रकृति अधिकारिणी है और महतत्व अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य

और इन्द्रियां मन तथा स्थूलभूतों का कारण है। पुरुष किसी का कार्य और उपादान कारण नहीं है। उस परमात्मा ने आकाश के उपरान्त वायु, उसके उपरान्त अग्नि, उससे पृथ्वी उससे अन्नादि, अन्नादि से वीर्य और वीर्य से सारी प्रजा रची।

जगत् के तीन कारण हैं-पहिला निमित्त, दूसरा उपादान और तीसरा साधारण। निमित्त कारण वह है जिसके बनाने से सब कुछ बने और न बनाने से न बने आप स्वयं बने नहीं दूसरों को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने वही अवस्थान्तर रूप हो के बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो हैं:-एक परमेश्वर सृष्टिकर्त्ता, दूसरा जीव जो सृष्टि के पदार्थों को लेकर कार्यान्तर बनाता है। उपादान कारण प्रकृति के परमाणु हैं, जिनसे सब कुछ बनता और बिगड़ता है। जड़ होने से स्वय न बनते हैं और न बिगड़ते हैं, यही संसार की सामग्री है। तीसरा साधारण कारण ज्ञान, दर्शन, बल, काल, दिशा और आकाश है, जैसे घड़ा बनाने में मिट्टी उपादान, कुम्हार निमित्त और चाक दण्ड आदि साधारण कारण हैं इन तीनों कारणों के बिना कोई वस्तु न बन सकती है और न बिगड़ सकती है।

वेद भगवान् कहते हैं कि यह सब जगत् सृष्टि के पहले प्रलय में अन्धकार से ढका था और पुनः प्रलयावस्था में भी वैसा ही हो जायगा। मनु महाराज कहते हैं कि प्रलय अवस्था में इस जगत् को कोई नहीं जानता था, न कोई लक्षण कर सकता था और न कोई तर्क कर सकता था, ? सब सोये हुये के समान थे जो लोग यह प्रश्न करते हैं कि निराकार परमेश्वर

साकार जगत् को कैसे रचता है वे भूल पर हैं, क्योंकि परमेश्वर जगत् का निमित्त कारण है और जो लोग परमेश्वर को साकार मानते हैं उनसे भी प्रश्न हो सकता है कि तुम्हारा साकार परमात्मा निराकार वायु को जो आकार रहित है कैसे रचता है ? बहुत से लोग यह पूंछते हैं कि क्या बिना कारण के परमात्मा सृष्टि नहीं रच सकता ? तो उनको समझना चाहिये कि जो असम्भव बात है वह कदापि नहीं हो सकती। बिना कारण के कोई भी वस्तु नहीं रची जा सकती। कारण का कारण भी होता है ? जड़ की जड़ न होने से, जड़ ही सब की जड़ है अर्थात् कारण का कारण न होने से कारण ही कारण है।

नास्तिक लोग कहते हैं कि संसार का रचयिता कोई नहीं सो ठीक नहीं है। प्रकृति जड़ होने से स्वयं विधि पूर्वक नहीं रची जा सकती। इस विषय पर १२ वें समुल्लास में सविस्तार कहेंगे।

परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में बहुत से मनुष्य रचे और जवान रचे। यदि बच्चे रचता तो पालता कौन और यदि बुड्ढे उत्पन्न करता तो वे सृष्टि की वृद्धि कैसे करते। दिन रात के समान संस्कार प्रवाह (सिलसिले) से अनादि है। पूर्व सृष्टि में प्रलय के समय तक जीवों के जैसे शुभाशुभ कार्य थे परमेश्वर ने इस सृष्टि को रचकर उनके कर्मानुसार वैसे ही शरीर दिये। इससे परमेश्वर में सुख दुःख देने का पक्षपात नहीं हो सकता। मनुष्य की उत्पत्ति आदि परमात्मा ने तिब्बत में की थी तिब्बत को संस्कृत में त्रिविष्टप् कहते हैं। जब यहां पर जनता अधिक हो गई तो यहां के वासी इस भूमि की ओर बढ़े जिस पर हम अब रहते हैं और उन्होंने ही इस भूमि का

नाम आर्यावर्त रक्खा। पहिले इस भूमि पर कोई नहीं रहता था सृष्टि के आदि में एक ही मनुष्य जाति थी। पश्चात् आर्य्य और शूद्र, ये दो हुये, आर्य्य और दस्युओं में लड़ाई झगड़ा होने के कारण इस भूमि को उत्तम जान आर्य लोग यहां पर आन बसे, इसी कारण इस देश का नाम आर्यावर्त अर्थात् आर्यजनों का निवास स्थान हुआ। जो लोग आर्यों को ईरान से आया हुआ बताते हैं वे भूल करते हैं। बौद्ध लोग आर्यावर्त्त से गये तो अपने तीर्थ स्थान बौद्ध गया आदि भी यहां छोड़ गए, मुसलमान अरब से आए, लेकिन उनका तीर्थ मक्का अरब ही में विद्यमान है। इसी प्रकार यदि हम ईरान से आए होते तो हमारा भी इसी प्रकार का कोई तीर्थ स्थान शेष रहा होता। हमारे तीर्थ आर्यावर्त्त में ही हैं, अतः हम तिब्बत के अतिरिक्त और कहीं से नहीं आए। हां हमारे आदि निवास स्थान तिब्बत को इतिहास "स्वर्ग" बतलाते हैं।

आर्यावर्त्त की सीमा–उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्या-चल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र है, यह मनु महाराज की सम्मति है जो आर्यावर्त्त देश से भिन्न देश को दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहते हैं। आर्यावर्त्त देश के ठीक पांव तले जो देश है "नागदेश" और पाताल भी कहते हैं। इसका इस समय प्रचलित नाम "अमेरिका" है। नाग वहां के निवासियों का नाम है। इसी "नागवंश" में वीर क्षत्रिय अर्जुन का विवाह उलूपी नाम्नी राजकन्या से हुआ था। इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सारे भूगोल पर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा था, उसी समय तक वेदों का प्रचार भी सारे भूमण्डल में रहा था। यह सारी बातें इतिहासों से सिद्ध हैं। जगत् की उत्पत्ति में अब तक एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख उन्चास सहस्र

इक्कीस वर्ष १९१९ ई० और संवत् १९७६ विक्रमी तक व्यतीत हुए हैं। इतना ही समय वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुआ है। सब से सूक्ष्म अवयव अर्थात् जो काटा नहीं जावे उसका नाम परमाणु है। साठ परमाणु मिलाकर एक अणु कहाता है। दो अणु का एक द्व्यणुक होता है जो स्थूल वायु है। तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुण का जल, पांच द्व्यणुक की पृथ्वी है। इसी प्रकार क्रम से मिलाकर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं। इस पृथिवी को 'शेष' अर्थात् (जो प्रलय में शेष रहे) वह परमेश्वर धारण किए हैं। वह पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूम रही है। और सूर्य अपनी कीली पर घूमता हुआ परमात्मा की शक्ति से स्थित है, चन्द्रादि लोक जो प्रकाश्य हैं, वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, वे स्वयं प्रकाश रहित हैं।

परमात्मा ने सारी सृष्टि को पूर्व कल्प के समान ही रचा है। सब लोकों में वेद भगवान् ही का प्रकाश परमात्मा ने किया है, सारे लोकों में हम जैसे मनुष्य ही रहते हैं चाहे कुछ-कुछ उनकी आकृति में भेद हो जैसा इस पृथ्वी पर भी देखा जाता है। जीवों और प्रकृति का अनादि काल से परमेश्वर चला आता है। यह सदैव से नियम रहा और रहेगा कि जड़ पर चैतन्य अधिकार रखे, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक अल्पज्ञ और एक देशी पर तीनों कालों में अधिकार रखता है इसी नियमानुसार जड़ प्रकृति पर चैतन्य जीव और ब्रह्म अधिकार रखते हैं और अल्पज्ञ और एक देशी जीव पर ब्रह्म अपना अधिकार रखते हैं।

आठवां समुल्लास समाप्त हुआ।

नवाँ समुल्लास

इसमें विद्या, अविद्या, बन्धन और मोक्ष का वर्णन है।

हे बालको! वेद भगवान् बताते हैं कि जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

अविद्या के लक्षण—अनित्य संसार और देहादि को नित्य मानना, मदिरा और व्यभिचारादि अपवित्रों को पवित्र मानना, अत्यन्त विषय आदि दुःख को सुख मानना, आत्मरहित में आत्मा का होना मानना ये चार प्रकार की अविद्या है। इसके विपरीत नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य मानना, पवित्रता को पवित्रता और अपवित्रता को अपवित्रता मानना, सुख को सुख और दुःख को दुःख मानना, आत्मा में आत्म बुद्धि और अनात्म बुद्धि रखना विद्या है या जिससे प्रत्येक वस्तु का यथार्थ रूप जाना जावे उसको विद्या कहते हैं। इसके विरुद्ध अविद्या कहाती है। यह विद्या ही मुक्ति का कारण है। क्योंकि शास्त्र कहता है कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। जो लोग यह कहते हैं कि मुक्त ब्रह्म ही बन्धन में आकर जीव बन गया सो ठीक नहीं क्योंकि नित्य मुक्त ब्रह्म कर्म-बन्धन में नहीं आ सकता। जब ब्रह्म जीव के समान कर्म करता ही नहीं तो बन्धन में किस कारण से आवे? निराकार होने से उसका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। इसलिये यह कहना कि ब्रह्म ही जीव बन गया सो ठीक नहीं है।

"जिससे बन्धनों से छूट जावे" उसे मुक्ति कहते हैं। बन्धन से छूटना सभी चाहते हैं। अतः मुक्ति प्राप्त करने की

इच्छा सब को ही बनी रहती है। वह बन्धन दुःख है इस दुःख से छूटने का उपाय परमेश्वर की आज्ञा-पालन अर्थात् वेदानुकूल कर्म करना है। मुक्त होने पर जीव परमेश्वर का आनन्द भोगता हुआ स्वेच्छा पूर्वक विचरता है। उस समय उसका हमारा सार भौतिक (माद्दी) शरीर नहीं होता। परन्तु हां, जब वह सुनना चाहता है तब श्रोत्ररूप, जब देखना चाहता है है तब नेत्ररूप हो जाता है। इसी प्रकार सारी इन्द्रियों की शक्ति को अपने शुद्ध संकल्प से ही धारण कर लेता है। जब अवधि बीत जाती है तो पुनः बन्धन में आ जाता है। यदि मुक्तात्मा लौट कर न आवे तो संसार में जीव समाप्त हो जावें और जिसका आदि है उसका अन्त भी होता है। इसी प्रकार जब मुक्ति का आरम्भ है तो अन्त भी अवश्य होगा।

शास्त्र बतलाते हैं कि जीव के अनेक जन्म हो चुके हैं। और सदैव होते रहेंगे। यदि यह कहा जावे कि इन सारे जन्मों की याद क्यों नहीं रहती तो यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि इस जन्म की भी बहुत सी बातें याद नहीं रहती। विशेष कर बालक पन की तो कोई बात भी याद नहीं रहती तो क्या बाल्यावस्था से भी इन्कार कर देना चाहिये ? यदि आवागमन न हो तो ईश्वर पर दोष आता है क्योंकि परमेश्वर ने किसी को सुखी और किसी को दुःखी बनाया है, तो क्या बिना कर्मों के ही सुखी दुःखी बना दिया ? यदि कहो कि ईश्वर की इच्छा, तो क्या जिस राज्य में किसी नियमानुसार दण्ड और पारितोषिक नहीं दिया जाता किन्तु अन्धाधुन्ध राजा की इच्छा मात्र से ही सब कुछ होता है, वहां अन्याय नहीं होगा ? इसी प्रकार जिस ईश्वर के यहां बिना किसी शुभाशुभ कर्मों के ही सुख दुःख दिये जाते हों, क्या वह ईश्वर अन्यायी नहीं होगा ?

इसलिये जीव कर्मानुसार स्थावर (वृक्षादि) से लेकर मनुष्य तक की योनि में जाता है।

जीव शरीर को छोड़ कर यमालय अर्थात् आकाश में रहने वाली वायु में रहता है, ऐसा वेद बतलाता है। गरुड़ पुराण का कल्पित यम कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। पश्चात् धर्मराज (ईश्वर) के न्यायानुसार कर्म फल भोगने को जन्म धारण कर लेता है। मनु महाराज कहते हैं कि जो मनुष्य सात्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम अर्थात् मनुष्य और जो तमोगुण युक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं। जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कीट, मछली, सर्प, कछुआ और पशु बनते हैं। इसी प्रकार नाना शुभाशुभ कर्मों के लिए अनेक योनियां परमात्मा ने रची हैं। जो मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा रखने वाला) है वह सब गुणों से पृथक् रहकर महायोगी बनकर मुक्ति का साधन करे। इस ही को अत्यन्त पुरुषार्थ कहते हैं।

नवां समुल्लास समाप्त हुआ।

दसवां समुल्लास

इसमें आचार, अनाचार, भक्ष्य अभक्ष्य का वर्णन है।

मनु महाराज कहते हैं कि मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त करती हैं उनके रोकने में प्रयत्न करे। जैसे सारथी घोड़े को रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इसी प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म-मार्ग से हटा कर धर्म-मार्ग में सदा चलाया करे।

पहला धन दूसरा बन्धु, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या, ये मान्य के कारण हैं। इनमें पहिले से दूसरा अर्थात् एक से एक अधिकतर माननीय है। अज्ञानी वृद्ध से ज्ञानी बालक उत्तम है। नित्य स्नानादि से शरीर को शुद्ध रक्खे इससे आरोग्यता प्राप्त होकर बुद्धि शुद्ध रहती है।

माता-पिता और आचार्य की सेवा करना देवपूजा कहाती है। बुरे मनुष्यों का संग सर्वदा त्याज्य है। अभक्ष्य पदार्थ न खाकर और सत्याचरण से रहकर दूसरे देशों में (आर्यावर्त से बाहर) जाना पाप नहीं है। महाभारत में शान्ति पर्वान्तर्गत मोक्षधर्म में व्यास-शुक संवाद लिखा है कि व्यास और उनके पुत्र शुकदेव पाताल अर्थात् अमेरिका में गये थे। पिता के कहने से शुकाचार्य हरिवर्ष (यूरुप) और हूण देश अर्थात् यहूदियों के देश को देखते हुए मिथिला पुरी में राजा जनक के पास आये, इस इतिहास से सिद्ध है कि पूर्व समय में विदेश गमन में कोई दोष नहीं समझा जाता था अतः अब भी नहीं समझना चाहिये पूर्व समय में तो आर्यावर्तवासियों के सम्बन्ध भी अन्य देशिया स्त्रियों से हुये हैं जैसे अर्जुन का अमेरिका-निवासिनी उलूपी से, धृतराष्ट्र का गान्धार (कन्धार) के राजा की कन्या गान्धारी से और पांडु का ईरान के राजा की कन्या माद्री से हुआ।

आज कल कच्ची पक्की रोटी-पूरी का भेद माना जाता है यह ठीक नहीं है। पूर्व समय में यह बखेड़ा नहीं था। स्वच्छ स्थान में भोजन करना चाहिये चाहे रोटी हो चाहे पूरी।

भोजन बनाने वाले नख और केश कटवाते रहें और मुख से पट्टी बंधी रहे जिससे थूक आदि भोजन में न गिरे।

मांसाहारी लोगों के हाथ का बना भोजन कभी न खाना चाहिए, क्योंकि वैसे दोष आर्यों को भी लग जाने का भय है। मादक द्रव्यों का भी सेवन नहीं करना चाहिए। इसके सेवन से बुद्धि नष्ट हो जाती है, यह मनु महाराज का उपदेश है। मांस भक्षण में भी महा दोष है क्योंकि मांस हिंसा किये बिना नहीं मिलता और हिंसा कर्म महा पाप लिखा है। अहिंसा परमधर्म है। एक पशु के दूध से लाखों मनुष्य तृप्त होते हैं, उनके बच्चों द्वारा हज़ारों मील पृथ्वी जोती जाती है। एक पशु के मारने से लक्षों मनुष्यों के घातक का पाप होता है इसलिए इन परोपकारी गाय बैल और बकरी आदि का मारना महापाप है। प्याज और लहसुन भी तमोगुणी होने से त्याज्य हैं।

एक साथ (एक ही पात्र में) भोजन करना हानिकारक है। बहुत से मनुष्यों को अनेक प्रकार के संक्रामक रोग होते हैं, उनके साथ एक पात्र में ही खाने से दूसरों को भी वैसा ही रोग लग जाने का भय है। इसलिए मनु महाराज कहते हैं कि न किसी का झूंठा खावे और न अपना झूंठा किसी को दे, न झूँठे मुंह कहीं फिरे।

अपने अपने गृहों को गोबर और मिट्टी से लीपकर स्वच्छ रक्खें मुसलमान ईसाइयों के समान घरों को भिनकता हुआ न रहने दें।

दसवां समुल्लास समाप्त हुआ।



उत्तरार्द्ध

ग्यारहवां समुल्लास

इसमें आर्यावर्त के मतों का खण्डन है।

यह आर्यावर्त देश सब देशों में उत्तम है। इसी कारण सृष्टि के आदि में आर्य लोग यहां आकर बसे थे। आर्य नाम श्रेष्ठ और दस्यु नाम उनसे विरुद्ध पुरुषों का है।

मनु महाराज कहते हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्यों को उचित है कि वे आर्यावर्त्त में आकर यहां के ब्राह्मणों से अपने अपने धर्म कर्म सीखें। जितनी विद्यायें भूगोल में फैली हैं वे सारी की सारी आर्यावर्त्त से ही गई हैं। प्रथम आर्यावर्त्त से मिश्र में विद्या गई, मिश्र से यूनान में, यूनान से रोम और रोम से योरुप और अमेरिका आदि में फैली।

सब से अधिक संस्कृत विद्या का प्रचार आर्यावर्त्त देश में है। जर्मन में विद्या का अधिक प्रचार बताने वाले भूल करते हैं। देखिए फ्रांस देशवासी "जेकालयट' साहब भी यही बात लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि जैसी उन्नति आर्यावर्त्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही हमारे देश की भी होवे,, देखो पुस्तक 'बाइबिल इन इण्डिया'।

दाराशिकोह बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि मैंने सारी भाषाएं अर्थात् फारसी, अरबी आदि पढ़ीं परन्तु शान्ति संस्कृत पढ़ने से ही मिली। देखिये यहां की विद्या का चमत्कार, कि काशी के मान मन्दिर में शिशुमार चक्र कैसा बनाया है कि जिससे अब भी बहुत सा खगोल विद्या संबन्धी

ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। शोक ! जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह है, जब नाश होने का समय आता है तो उल्टी बुद्धि वाले उल्टे होकर उल्टे ही काम करने लगते हैं।

जब महाभारत के घोर युद्ध में बड़े २ विद्वान् राजा महाराजा और ऋषि मुनि बहुत मर गये तब विद्या और वेदोक्तधर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ब्राह्मण लोग ही सब मूर्ख हो गये तो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की क्या कथा ? वेदों का पठन-पाठन छूटने के कारण यथार्थ ज्ञान जाता रहा, नाना पन्थों की नींव पड़ गई। ब्राह्मण मूर्ख, क्षत्रिय विषयी, वैश्य लोभी और शूद्र भ्रष्टाचारी बन गये। बाल-विवाह, बहु विवाह और वृद्ध विवाह प्रचलित हो गये। स्वर्ग के ठेकेदार मूर्ख और स्वार्थी बन बैठे।

एक परमात्मा के स्थान में नाना देवी-देवता पुजने लगे ब्रह्मचर्य का स्थान व्यभिचार ने आ घेरा। विषयासक्त होकर आर्य जाति मद्य मांस का सेवन करने लगी। उन्हीं में से एक वाम मार्ग खड़ा हो गया। जिन्होंने 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच' आदि पुस्तकों में लिखकर उन ग्रन्थों का नाम तन्त्र रख लिया।

वाम मार्ग में वे सब बातें हैं जो अति निन्दित और महा अपवित्र समझी जाती हैं ! जैसे मांस खाना, मद्य पीना, व्यभिचार, यह सब बातें शास्त्रविरुद्ध हैं। परन्तु वाम मार्ग में बड़े शुभ कर्म समझे गये हैं। इनके मत में मद्य इतना पिये कि पीते २ गिर पड़े फिर उठे फिर पिए इस प्रकार गिरने और

पीने वाला मुक्त हो जाता है। इन्होंने ही अश्वमेध, गोमेध और नरमेध के अर्थ बिगाड़ कर, यज्ञों में पशुओं का हनन करके मांस खाना आरम्भ कर दिया और बहाना यह किया कि पशु स्वर्ग को जाता है। जहां 'अश्वमेध का अर्थ प्रजा का पालन, घृतादि से होम करना और 'गोमेध' का अर्थ इन्द्रियों को पवित्र करना था, वहां इन शब्दों के बहाने यज्ञ में पशुओं का बलिदान दिया इसी प्रकार 'नरमेध' के अर्थ मनुष्य के मृत शरीर की विधिवत् दाह क्रिया करने के थे, पर इन्होंने मनुष्यों को मार मार कर यज्ञ में डालना आरम्भ कर दिया। जहाँ ऐसे २ अनर्थ होने लगे वहां शान्ति और कुशल कहां? मूर्खों ने यज्ञ जैसे पवित्र कर्म को कलङ्कित कर दिया।

जब मनुष्यों ने ऐसे २ काम देखे तो उनकी श्रद्धा वेदों पर से जाती रही। उसी समय बौद्ध और जैनमत जो कि वेद के महान् शत्रु थे प्रचलित हुए। उन्होंने इस बात का प्रचार आरम्भ किया कि यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता को मार कर यज्ञ में डाल कर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचा देता? "यदि दूसरों को खिलाया हुआ मरों के पास पहुँच जाता है, तो मार्ग में चलने हारों के लिये पाथेय (तोशा) बांधना व्यर्थ है उसके नाम से घर वाले किसी को खिलादें और वह भोजन परदेश में गये हुए को तृप्त कर दे।" इसी प्रकार की शंकायें करके लोग वैदिक धर्म को छोड़कर जैनी और बौद्ध बनने लगे। वेदों के पठन पाठन, यज्ञोपवीत और ब्रह्मचर्य का लोप होने लगा। जितने वेद पुस्तक पाये वे सब जलाये जाने लगे, वैदिकधर्मी दण्डित होने लगे। जैन लोग ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त अपने २४ तीर्थङ्करों की बड़ी बड़ी मूर्त्तियाँ बनाकर

पूजने लगे। यह मूर्ति-पूजा इन जैनियों से ही चली है जिसको इस समय तक अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

बाईस सौ वर्ष व्यतीत हुए कि द्रोपद देशोत्पन्न ब्राह्मण सोचने लगे कि किस प्रकार सत्य वेद मत का लोप होकर नास्तिक मत का प्रचार बढ़ गया? इस नास्तिक मत को दूर कर किसी प्रकार सत्य वैदिकधर्म की स्थापना करनी चाहिये शंकराचार्यजी ने जहां अपने शास्त्र पढ़े थे, वहां जैन ग्रन्थों का भी भले प्रकार अभ्यास किया था। उन्होंने सोचा कि उपदेश और शास्त्रार्थ द्वारा इनके मत का खण्डन और वेदमत की स्थापना करना चाहिये। ऐसा निश्चय करके वे उज्जैन नगरी में आये वहां उस समय सुधन्वा राजा राज्य करता था। वह जैन ग्रन्थों के अतिरक्त कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहां जाकर श्री शंकराचार्यजी वेदों का उपदेश करने लगे। राजा से कहा कि तुम मेरा शास्त्रार्थ जैन लोगों से करादो। मेरे जीतने पर जैनों को वेदमत स्वीकार कर लेना होगा और यदि मैं हार जाऊँ तो मैं जैन मत स्वीकार कर लूंगा। सुधन्वा ने जब श्री शंकराचार्य की यह बात सुनी तो उसने प्रसन्न होकर कहा कि "मैं सत्यासत्य के निर्णय के लिए अवश्य शास्त्रार्थ कराऊँगा" शास्त्रार्थ के लिए बड़ी २ दूर से जैन पण्डित बुलाये गए। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, स्वामी शङ्कराचार्य जी का पक्ष वेदमत की स्थापना और जैनमत का खण्डन था और जैनों का पक्ष वेदमत का खण्डन और स्वपक्ष मण्डन था। जैन सिद्ध करते थे कि सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं ये जगत् और जीव दोनों अनादि हैं इनका कभी नाश और उत्पत्ति नहीं होती। इसके विरुद्ध श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी का मत था अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है, यह जगत् जीव

झूंठ है क्योंकि परमात्मा ने अपनी माया से जगत् बनाया है। और वही धारण और प्रलय कर्त्ता है। बहुत दिनों तक यह शास्त्रार्थ होता रहा अन्त में स्वामी शङ्कराचार्यजी का मत युक्ति और प्रमाणों से अखंडित रहा। जैनों का पक्ष गिर गया बड़ा हल्ला मचा। सुधन्वा के मित्रों ने और बहुत से शास्त्रार्थ कराए परन्तु जैन बराबर हारते ही रहे। सुधन्वा राजा ने श्री शंकराचार्यजी के प्रचार करने का प्रबन्ध कर दिया। देश में यज्ञोपवीत होने लगे, वेदों का पठन-पाठन भी आरम्भ हो गया। जैन मूर्तियां बहुत स्थानों में तोड़ दी गईं, कुछ जैनों ने गाढ़ दीं जो अब तक भूमि में से निकलती हैं। श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी के समय में शैवादि मत भी प्रचलित थे, जिनका खण्डन उक्त स्वामीजी ने किया है। जैन मन्दिर, वैदिक पाठशालाओं के लिए रख छोड़े गए, तुड़वाए नहीं। कुछ काल के उपरान्त एक कट्टर जैन ने ऊपर से वैदिक बन छल से श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी को विष देकर मार डाला। स्वामीजी के शिष्य मठ बनाकर प्रचार करने लगे।

यदि श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी का जीव तथा ब्रह्म का एक होना अपना मत था तो अच्छा न था और यदि वह केवल जैनों का खंडन करने के लिए था तो कुछ अच्छा था।

गुरु शिष्य संवाद।

शिष्य—गुरुजी, क्या यह जगत् स्वप्न के समान मिथ्या है।

गुरुजी—नहीं, जगत् मिथ्या नहीं किन्तु सत्य है यदि मिथ्या होता तो दीखता ही क्यों ?

शिष्य—महाराज ? कहते हैं कि जैसे रस्सी में सांप और सीपी में चांदी न होने पर भी उनकी प्रतीति होती है वैसे ही इस में सत्यता न होने पर भी वह प्रतीत होता है।

अतः जगत् झूठा और ब्रह्म सत्य है।

गुरु---तुम झूंठा किस को कहते हो?

शिष्य-जो वस्तु न हो और न दीखे।

गुरु---जो वस्तु ही नहीं वह दीखे कैसे?

शिष्य--महाराज ! नवीन वेदान्ती यह कहा करते हैं कि अध्यारोप से ऐसा होता है।

गुरु---भला तुमने उनसे यह भी पूछा है कि अध्यारोप किस को कहते हैं।

शिष्य--हां महाराज ! पूछने पर यह उत्तर मिला है कि पदार्थ कुछ और हो और उसमें किसी वस्तु का आरोपण (कायम) करना अध्यारोप कहाता है।

गुरु---प्रिय शिष्य ! तुम रज्जु (रस्सी) को वस्तु और सर्प को अवस्तु मानकर भ्रम में पड़े हो। क्या वास्तव में सर्प मिथ्या है? यदि कहो कि रस्सी में नहीं प्रत्युत देशान्तर में है तो क्या देशान्तर में होने से वह मिथ्या हो गया। इसी प्रकार सिप्पी में चांदी और स्थाणु (पेड़की) ठूंठ में मनुष्य की व्यवस्था समझनी चाहिये।

शिष्य-श्री महाराज ! हम सुना करते हैं कि जिस प्रकार स्वप्न में देखी हुई सारी वस्तुएं असत्य होती हैं, ठीक उसी प्रकार यह जगत् स्वप्न के समान असत्य (मिथ्या) है क्योंकि जागने पर जैसे स्वप्न की वस्तुएं असत्य हो जाती है वैसे ही तत्त्व ज्ञान होने पर यह संसार असत्य हो जाता है।

गुरु---प्रिय शिष्य ! यह बात इस प्रकार नहीं है। जैसे कि तुमको समझाई जाती है। तत्त्व यह है कि जो कुछ

स्वप्न में देखा जाता है, वह सब ही किसी अन्य देश में रहता है। जिस वस्तु की सत्ता (हस्ती) नहीं होती, वह स्वप्न में भी नहीं दीखता। जिस वस्तु का जागृत अवस्था में विशेष ध्यान करते हैं वही हमको स्वप्न में भी दीखती है, अन्य नहीं। यह बात दूसरी है कि जो वस्तु जागते में आज देखी हो परन्तु उस को स्वप्न में कुछ काल के उपरान्त देखें।

शिष्य--फिर श्री महाराज ! ऐसी असम्भव सी बातें क्यों दीखती हैं जो जगत् में होती ही नहीं ?

गुरुजी--वह कौनसी ?

शिष्य--जैसे मनुष्य स्वयं उड़ता है, अपना शिर कटा देख स्वयं रोता है।

गुरुजी--इसका भी एक विशेष कारण है। जिस प्रकार एक कोई बड़ा पदाधिकारी व किसी कार्यालय का स्वामी अनेक क्लर्क (लेखक) के आफ़िस में जाकर कोई वस्तु या पत्र ढूंढना चाहता है। परन्तु उस समय उसके साथ क्लर्क नहीं है। उस समय वह विना किसी विशेष ज्ञान के प्रत्येक वार ऐसी वस्तु को उठा लेता है जिसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि उसको ज्ञान नहीं कि अमुक पत्र जिसको मुझे लेना है कहां रखा है ? इसलिये कभी मेज़ की दराज़ खोलने लगता है, कभी कभी मेज़ पर चढ़ कर किसी ऊंची आल्मारी के ऊपर झांकता है। अतः इसी प्रकार भटकता फिरता है। ठीक इसी तरह स्वप्न में यह मन, उस जगत् में जिसका संस्कार हृदय में हो गया है, विचरता है। जाग्रत अवस्था में बुद्धि रूपी क्लर्क इसके

साथ रहता है, ज्ञान पूर्वक बुद्धि की सहायता से ठीक ठीक वस्तुओं का ग्रहण करता हुआ कार्यवाही करता है। परन्तु स्वप्न में केवल मन ही मन है, बुद्धि रूप क्लर्क वा सहायक इसके साथ नहीं रहता है, अतः निस्सहाय होकर यह अस्त व्यस्त (गड़बड़ी के साथ) कार्य करता है इसी कारण स्वप्न की बातें असम्भव सी प्रतीत होती हैं समझ गये ?

शिष्य--जी महाराज ! मैं भली प्रकार समझ गया, परन्तु मुझे थोड़ा सा भ्रम और है, क्या कृपा करके आप उसका निवारण भी कर देंगे ?

गुरुजी-हां अवश्य । कहो क्या भ्रम है ?

शिष्य--महाराज ! भ्रम यह है कि जिस प्रकार जल में स्वच्छ आकाश का आभास (अक्स) दीखता है और जिस प्रकार जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब दीखता है उसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का आभास पड़ने से जीव बन जाता है ऐसा मैंने सुना है।

गुरुजी-तुमने दर्शनों में पढ़ा होगा कि आकाश में रूप नहीं है, फिर कैसे माना जा सकता है कि आकाश का आभास पानी में पड़ता है ? जब दृष्टान्त ही दूषित है तो पक्ष सिद्ध कैसे हो सकता है ? अब रही सूर्य वाली बात सो भी असङ्गत है। सूर्य और जल दोनों साकार हैं परन्तु ब्रह्म निराकार है सो निराकार ब्रह्म का प्रतिबिम्ब कैसा ? क्यों समझ में आ गई।

शिष्य--(गुरुजी के चरण छूकर) महाराज आपने बड़ी कृपा

करके चिरकाल का सन्देह दूर कर दिया। मैं इसका बड़ा कृतज्ञ हूं, भगवन्! नमस्ते।

स्वामी शङ्कराचार्य के ३०० वर्ष बाद उज्जैन नगरी में महाराज विक्रमादित्य राजा हुए जिन्होंने देश में बहुत कुछ शांति स्थापित की। उसके पश्चात् श्रीभर्तृहरि राजा हुए जिन्होंने वैरागी होकर राज्य छोड़ दिया। विक्रमादित्यजी के पांच सौ वर्ष बाद राजा भोज हुए उन्होंने कुछ व्याकरण और काव्य बनाये हैं। उनके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया। श्री शंकराचार्यजी से कुछ वर्ष पूर्व शैव मत भी प्रचलित था। इन शैवों की बहुत सी शाखायें हो गईं। श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी के अनुयायी संन्यासी भी शैव मत में प्रवृत्त हो गये और वाममार्गियों को अपने में मिलाते रहे। वाममार्गी, शिव की पत्नी, देवी के उपासक बने और शैव शिव के उपासक बने परन्तु जितने वेदविरोधी वाममार्गी हैं, उतने शैव नहीं है। स्वार्थियों ने अपनी अपनी मतसिद्धि के लिए अनेक तन्त्र और पुराणादि बना लिये। महादेव के नाम से मन्त्र और व्यास जी के नाम से पुराण बना लिया। राजा भोज के समय तक महाभारत में ३० सहस्र श्लोक थे, उनके पिता के समय तक २५ सहस्र थे। महाराज विक्रमादित्य के समय तक २० सहस्र थे और व्यासजी ने तो केवल ४ सहस्र चार सौ ही बनाये थे। व्यासजी के शिष्यों ने ५ सहस्र छः सौ बनाये। इस प्रकार व्यासजी और उनके शिष्यों ने कुल १० सहस्र श्लोक बनाये परन्तु इस समय सवालाख के लगभग महाभारत में श्लोक विद्यमान हैं। यह सब (१० सहस्र को छोड़कर) अन्यों के मिलाये क्षेपक हैं। भोज का वेदादि शास्त्रों से प्रेम था क्योंकि उसके समय में कलाकौशल भी उन्नत दशा पर था। भोजप्रबन्ध में लिखा है:-

घट्यैकया क्रोशदशैकमश्वः
सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या ।
वायु ददाति व्यजनं सुपुष्कलम्,
विना मनुष्येण चलत्यजस्रम् ।

राजा भोज के समय में एक शिल्पी ने ऐसा घोड़ा और पंखा बनाया था कि घोड़ा तो एक घड़ी में ११ कोस चलता था। पंखा भी बिना किसी मनुष्य के चलाये बड़ी सुन्दर वायु देता था ।

यह घोड़ा कोई विशेष कल लगा कर लकड़ी का बनाया गया था जो कि पृथ्वी और अन्तरिक्ष दोनों में चलाया जाता था। यदि आज तक ये दोनों वस्तु भारतवर्ष में विद्यमान रहतीं तो योरुप के लोगों को यह कहने का साहस न होता कि प्राचीन आर्य कलाकौशल नहीं जाते थे ।

जैन लोगों के देखादेखी इन शैवादि मतानुयायियों ने भी वैसी ही कथायें कहना आरम्भ कर दीं। जैनों के समान ही मन्दिर और मूर्तियों का पूजन भी आरम्भ कर दिया। जैसे जैनियों के २४ तीर्थङ्कर हैं वैसे ही इन्होंने १८ पुराण बनाना आरम्भ कर दिये ।

(शैवमत के उपरान्त वैष्णव मत का आरम्भ ।)

राजा भोज के १।। सौ वर्ष उपरान्त वैष्णव मत का आरम्भ हुआ। इसके आदि प्रवर्तक 'शठकोप' हुये हैं। ये इस मत का थोड़ा ही प्रचार करने पाये। इनके ही पश्चात् मुनिवाहन हुए और पुनः "यवनाचार्य" और तत्पश्चात् ब्राह्मणकुलोत्पन्न श्री रामानुज हुए। इन्होंने अपने धर्म का अधिक प्रचार किया।

शैवों ने "शिव पुराण" वैष्णवों ने "विष्णु पुराण" शाक्तों ने देवी भागवतादि व्यासजी के नाम से पुराण बनाये। इन पुराणों में भी आपस के मत मतान्तरों के ही झगड़े हैं। पुराण कर्त्ताओं ने अपने अपने उपास्य देवों को सृष्टि का रचयिता लिखा है, उनको ही सर्वोपरि उपास्य माना है और अन्यों को उपासक की पदवी दी है। प्रत्येक पुराण में भिन्न भिन्न प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति लिखी है। शैव रुद्राक्ष और भस्म को वैष्णव कण्ठी तिलक को, शाक्त मदिरा आदि को स्वर्ग देने हारे बताते हैं।

वैष्णव लोग कहते हैं कि शरीर को शंख चक्र से दाग लेने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसके लिये ऋग्वेदादि का प्रमाण देते हैं परन्तु वह मन्त्र इस बात को नहीं बतलाता। उसका आशय यह है कि बिना तप किये हुए परमेश्वर नहीं मिलता। अतप्त अर्थात् जो ब्रह्मचर्य सत्य, शम, दम और जितेन्द्रियत्व आदि तपश्चर्या से रहित अपरिपक्व आत्मा है वह मेरे रूप को प्राप्त नहीं होता। इसमें शरीर को दाग लेने की आज्ञा नहीं है किन्तु सत्य भाषणादि तप कहाते हैं जो मुक्ति के साधन हैं। रामानुजजी का मत शंकराचार्यजी के मत के विरुद्ध है। अर्थात् शंकराचार्यजी का मत यह है कि ब्रह्म और जीव एक ही हैं परन्तु इसके विरुद्ध रामानुज जीव ब्रह्म और प्रकृति इन तीनों को अनादि मानते हैं इनका मत विशिष्टाद्वैत कहाता है।

मूर्तिपूजा महाप्रकरण।

शिष्य—श्री गुरुजी महाराज, यह मूर्तिपूजा कहां से चली?
गुरुजी—जैनियों से।
शिष्य—जैनियों ने कहां से चलाई?

गुरुजी—अपनी मूर्खता से।

शिष्य—जैन लोग कहते हैं कि ध्यान में लगी हुई मूर्तियों को देखकर अपना जी भी वैसा ही शांत बनने का यत्न करता है।

गुरुजी—जीव चेतन और मूर्ति जड़ है। क्या जड़ मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जावेगा।

थोड़ी देर के उपरान्त शिष्य ने फिर तर्कना की।

शिष्य—यदि मूर्ति पूजा जैनों से चली तो अन्य पौराणिकों की भी मूर्तियां जैन मूर्तियों के समान क्यों नहीं ?

गुरुजी—यदि वैसे ही बनाते तो उनमें ही न मिल जाते, अतः उन्होंने अपनी और प्रकार की बनाईं।

शिष्य—महाराज! जब ईश्वर निराकार है तो उसका ध्यान किस प्रकार हो सके ? इसलिये उसकी मूर्त्ति बनानी चाहिये।

गुरुजी—जब परमेश्वर निराकार है तो उसकी मूर्त्ति बन ही नहीं सकती। जो मूर्त्ति के देखने से परमेश्वर का ध्यान हो तो उस ईश्वर के बनाये पृथ्वी सूर्य आदि के देखने से ईश्वर का ध्यान क्यों नहीं होता ?

शिष्य—यह तो हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, राम, कृष्ण और अन्य अवतार धारण किये हैं, इसलिये उन अवतारों की मूर्त्ति बनाकर पूजने में क्या हानि ?

गुरुजी—जब परमेश्वर को अकाय कहा है तो उसका अवतार लेना कैसा ? सर्वव्यापी ब्रह्म एकदेशी होकर कैसे आ और जा सकता है ? आना जाना एक देशी में होता है।

शिष्य--जब परमेश्वर सर्वव्यापक है तो क्या मूर्त्ति में नहीं है, फिर उस मूर्त्ति के पूजन में क्या दोष ?

गुरुजी--जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो किसी एक वस्तु में भावना करना अन्यत्र न करना कैसी विचित्र बात है ! एक चक्रवर्ती राजा को सारे देश से हटा कर किसी एक झौंपड़ी का स्वामी बनाते हो यह क्या उसका अपमान करना नहीं है ? जब सर्वव्यापक है तो क्या फूल, चन्दन, पानी, चावल और हाथों में नहीं है ? यदि है तो क्या. यह परमेश्वर का परमेश्वर पर चढ़ाना नहीं हुआ ।

शिष्य--महाराज ! हमने सुना है कि पुजारी लोग मूर्त्ति में ईश्वर का मन्त्रों से आह्वान कर लेते हैं ।

गुरुजी--आह्वान करने से ईश्वर वा देवता आ जाते हैं तो वह मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती ? वेदों में ईश्वर के आह्वान और विसर्जन का कहीं भी चर्चा नहीं है ।

शिष्य--महाराज ! वेदों में कहीं पर मूर्त्ति पूजा का खंडन भी है ।

गुरुजी--हां अवश्य है, देखो यजुर्वेद में लिखा है कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" अर्थात् उस परमेश्वर की प्रतिमा (मूर्ति) नहीं है । जब वेद ही मूर्ति पूजा का निषेध करता है तो फिर ऐसा कर्म जो वेद विरुद्ध है नहीं करना चाहिये, इस से वेदों की निन्दा होती है । जो वेदों की निन्दा करता है वह नास्तिक कहाता है । देखो मनु महाराज कहते हैं 'नास्तिको वेदनिन्दकः' ।

शिष्य--हमने लोगों को यह कहते सुना है कि निराकार में जी नहीं लगता, अतः मन ठहराने के लिए उस की मूर्ति सामने धर लेते हैं ।

गुरुजी—देखो, साकार में मन कभी नहीं ठहर सकता। जब कभी साकार का ध्यान करने बैठोगे तो उस साकार मूर्ति के प्रत्येक अङ्ग में मन दौड़ा दौड़ा फिरेगा, कभी शांति न हो सकेगी, यदि शांति हो जाती तो सांसारिक पुरुषों के मन सदैव धनादिकों में लगे रहते हैं वह शांत होते परन्तु क्या उन्होंने कभी शांति प्राप्त की, कभी नहीं।

शिष्य—अच्छा दयासिन्धो! आप कृपा करके वह सारे के सारे दोष जो मूर्त्ति पूजा में हैं एक ही वार बतादें, जिससे आपका अमूल्य समय अधिक नष्ट न हो।

गुरुजी—तुमने ठीक कहा। सुनो:—

१—मूर्ति पूजा से परमात्मा का ज्ञान नहीं हो पाता। शास्त्र कहता है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् बिना परमात्मज्ञान के मुक्ति नहीं होती।

२—करोड़ों रुपये मन्दिर आदि बनाने में व्यर्थ व्यय होते हैं।

३—स्त्री-पुरुषों के मंदिरों में आने जाने और हँसी ठट्टा करने से व्यभिचार बढ़ता है।

४—पाषाण पूजा को ही सब सुखों का साधन मान कर पुरुषार्थ हीन बन बैठते हैं।

५—नाना प्रकार की आकृति वाली मूर्ति पूजने से पुजारियों में एकमत न होकर आपस में वैमनस्य होता है।

६—परमेश्वर के नाम के स्थान में पत्थर की स्थापना परमात्मा का अपमान सूचक चिह्न है।

७—परमेश्वर को सर्वव्यापक न समझ कर देश देशांतरों में मारे मारे फिरना।

८—पुजारियों को धन देने से उसका अपव्यय होकर संसार को हानि पहुँचाना।

९—सच्चे माता पिता रूप चेतन मूर्त्तियों का सत्कार न होना।

१०—मूर्त्तियों के टूटने पर देवताओं को हानि पहुँचने रूप अज्ञान की वृद्धि अर्थात् यह समझ बैठना कि मूर्त्ति टूटने से देवता को हानि पहुँची।

११—जड़ की संगति करने से बुद्धि का भी जड़ के समान हो जाना।

१२—सुगन्धित पदार्थों को बुरे प्रकार काम में लाने से संसार में दुर्गन्धि फैलना क्योंकि परमात्मा ने पुष्प आदि पत्थरों पर चढ़ाने के लिये नहीं बनाये हैं। ये थोड़े से दोष मूर्ति पूजा के बतलाये हैं और भी बहुत दोष हैं। बालको, तुम उनको अपनी बुद्धि से भी विचारो।

पञ्चायतन पूजा अर्थात्

पांच देवताओं की पूजा।

बालको! तुमको पांच चेतन मूर्त्तियां पूजने की बात बताते हैं, ध्यान से सुनो—

१—सब से प्रथम 'माता' मूर्त्तिमती पूजनीय देवता है सन्तानों को उचित है कि तन, मन, धन से उसकी सेवा करके सदैव प्रसन्न रखें। माता-पिता को कभी कष्ट नहीं देना चाहिए।

२—"पिता" सत्कार करने के योग्य है। माता के समान उसकी भी सेवा करनी चाहिए।

३—"आचार्य (गुरुजी) जिसने विद्या पढ़ा कर तुम को योग्य बनाया है।

४—"अतिथि" जिसके आने की कोई तिथि नियत न हो किन्तु अचानक अपने गृह पर आ जावे। ऐसे धर्मात्मा परोपकारी और विद्वान् महात्मा की यथायोग्य सेवा करे।

५—पति के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पति ये दोनों एक दूसरे का सदैव सत्कार करते रहें। यही पांच मूर्तिमान देव हैं जिन से इस लोक और परलोक दोनों में मनुष्य कल्याण को प्राप्त कर ईश्वर से मिलता है।

मन्दिरों का वर्णन

कलकत्ते में काली का मन्दिर है। उसमें काली देवी की मूर्त्ति है, सदैव बकरे काट कर उसके लिए बलि दिए जाते हैं, मन्दिर का आंगन रक्त मांस से पूरित रहता है। मक्खी भिनकती रहती हैं, इसके पूजने वाले शाक्त होते हैं, यह मन्दिर इन्द्रमणि का बनवाया हुआ है। इसके सम्बन्धी कलकत्ते में रहते हैं।

उड़ीसा में जगन्नाथ का मन्दिर—इस मन्दिर में सुभद्रा, बलदेव और श्रीकृष्ण की मूर्त्ति बनी हैं। बीच में सुभद्रा और इधर उधर दोनों भाई हैं। इस मन्दिर के ऊपर ऐसी अश्लील (फोश) मूर्त्तियां बनी हैं जिनके देखने से स्त्री पुरुषों के चित्त विकृत होते हैं। यहां पर सब जाति के मनुष्य एक दूसरे का झूंठा खाते हैं दिन रात में कई बार भात, दाल, कढ़ी आदि का बालभोग लगता है। इस ही को पुरी के सारे निर्धन लोग मोल लेकर खाते हैं। पत्तलों पर बचा हुआ झूठा भात मन्दिर के सहन में दुकानदार लोग बेचा करते हैं, जिस को यात्री लोग पवित्र समझ मोल लेते हैं। इस सूखे और जूठे भात को यात्री लोग अपने अपने स्थानों पर लाकर ब्रह्म भोज के समय

सारे भोजन में मिला कर औरों का भी धर्म भ्रष्ट करते हैं। वहां पुजारी लोग कहते हैं कि यहां जो लोग इस जूठे भात को नहीं खाते वह कुष्ठी हो जाते हैं। यह सर्वथा मिथ्या है, बहुत से नहीं खाते परन्तु वे अच्छे खासे हैं। इस मन्दिर के पुजारी और नौकर प्रायः सब ही विद्याहीन हैं। यह पाप उनके सिर पर है जो विना समझे बूझे मूर्खों को धन देते हैं। यहां के पुजारियों को बुलबुल (एक प्रकार की चिड़िया) लड़ाने का भी व्यसन है। सारी पुरी में एक भी संस्कृत पाठशाला नहीं है। मूर्ख रहने का यही कारण है। कुछ काल पहिले जिस वर्ष में आषाढ़ मास दो होते थे जगन्नाथ का कलेवर (शरीर) बदला जाता था। उस समय राजा, पण्डा और बढ़ई जो चन्दन का शरीर बनाता था, विष देकर मार डाले जाते थे और यह कहा जाता था कि कलेवर बदलते समय जगन्नाथ इन तीनों को अपने साथ ले गए परन्तु अब ऐसा नहीं होता।

ऊपर तले सात हन्डे रख कर सब से प्रथम ऊपर वाले का पकाना यह भी कपट चातुरी है, यह छल यात्रियों का धन लूटने के लिये है।

काशी में विश्वेश्वरनाथ का मन्दिर है—यह शिवजी का मन्दिर कहा जाता है। यह शिव काशी-नगर का स्वामी भी बताया जाता है। मुसलमान बादशाह औरङ्गजेब ने इस मन्दिर को तोड़ कर इसके स्थान पर एक विशाल मस्जिद बनवा दी है। इस टूटे हुए मन्दिर का कुछ भाग अब तक मस्जिद की पीठ से जुड़ा हुआ है। मन्दिर के टूटते समय वहां के पुजारियों ने शिव की पिंडी को इस भय से कुएं में डाल दिया था कि कहीं यह मूर्त्ति मुसलमानों के हाथ न पड़ जाये, परन्तु यह कहा जाता है कि शिव स्वयं ही कुएं मे जा छिपे। इस समय उस

टूटे हुए मन्दिर के स्थान में एक और नया मन्दिर बना लिया गया है। इसके भीतर भी एक शिव पिंडी स्थापित करली गई है। पुराने शिव अभी कुएं में ही पड़े हैं।

विहार में गया का मन्दिर है, यह मुर्दों के श्राद्ध करने का स्थान है। कहते हैं कि पहले उस समय में पितरों के हाथ निकलते थे और पुत्र उन हाथों पर पिण्ड धर कर सन्तुष्ट होते थे, परन्तु अब ऐसा नहीं होता। सो क्यों? प्यारे बालको! ये सारी बातें भोले भाले लोगों को बहकाने के लिए हैं। यहां के पण्डे भी यात्रियों से प्राप्त किए धन को किसी सुकार्य में नहीं लगाते।

रामेश्वर का मन्दिर—यह दक्षिणी समुद्र के एक टापू में है। रामराज का जो उस देश का राजा था, बनवाया हुआ है इसीलिए इसको परामेश्वर कहते हैं। इस शिव में यह चमत्कार बताया जाता है कि गङ्गाजल ऊपर छोड़ने से वह गङ्गाजली तक बढ़ जाता है परन्तु यह कोरी गप्प है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसको रामचन्द्रजी का स्थापित किया हुआ बताया है परन्तु इस बात को सच इसलिये नहीं मान सकते कि दशरथ पुत्र रामचन्द्रजी के समय में मूर्त्ति-पूजा का प्रचार ही नहीं था इसीलिए वाल्मीकिजी ने भी अपनी रामायण में तुलसीदासजी के समान नहीं लिखा। हां इतना अवश्य लिखा है-कि 'हे सीताजी! इस स्थान पर सब से पूर्व सर्वव्यापक महादेव (परमेश्वर) ने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की। देखो यह सेतुबन्ध एक पवित्र स्थान है, यह बात महाराज रामचन्द्रजी ने लङ्का से लौटते समय रामेश्वर के पुल को देखकर कही थी।

सोमनाथ का मन्दिर—यह मन्दिर गुजरात के काठियावाड़

दश में था, इसको मोहम्मद गज़नवी ने अपने अन्तिम आक्रमण (हमले) में सन् १०२४ ईसवी में तोड़ डाला। इसमें से करोड़ों रुपये का माल ले गया। इसमें लक्षों रुपए के स्वर्ण पात्र विद्यमान थे, जो सब शत्रुओं के हाथ लगे। इतिहास बतलाता है कि यह शिव मूर्ति अधर लटकी रहती थी। इस अधर लटकने का कारण यह बतलाया जाता है कि इस मन्दिर की छत और पृथिवी पर चुम्बक पत्थर लगा हुआ था जिस से यह मूर्ति अधर लटकी रहती थी। मोहम्मद ने स्वयं अपने हाथ से गदा मार कर इस मूर्ति को तोड़ा था इसके टूटने पर लक्षों रुपयों के मणि—माणिक इसके पेट में से निकले थे। यह सब मणियें मूर्ति ने मानों महमूद को भेंट दी थीं। तोड़ने वालों को तो सब कुछ दिया परन्तु पूजने वालों को भी कुछ मिला ? हां मिला क्या ? वही गुलामी। क्योंकि मन्दिर के सारे पुजारियों को महमूद दास बनाकर गज़नवी को ले गया था।

ज्वालामुखी—यह जिला कांगड़े में ज्वालामुखी देवी का मन्दिर कहाता है। यह एक ज्वालामुखी पहाड़ है, जिसमें से पृथिवी के भीतर की अग्नि नित्य निकला करती है। इस अग्नि उगलने वाले मुख के ऊपर ही मन्दिर बनाया गया है। हिन्दू लोग इसको देवी का चमत्कार मानते हैं, यह उनकी भूल है। कारण यह है कि ऐसे बहुत से पहाड़ इस पृथिवी पर विद्यमान हैं। अन्य देशों में भी कुछ काल व्यतीत हुआ इस प्रकार के पहाड़ों को देवी का स्नानागार (हम्माम) मानते थे, परन्तु वहां विद्या का प्रचार हो जाने से यह अन्धविश्वास नहीं रहा।

गुरुद्वारा—यह मन्दिर अमृतसर नगर में एक ताल के

मध्य में बना है । इसके ऊपर सुवर्ण चढ़ा हुआ है। गुरु नानकजी लिखित ग्रन्थ साहब इस मन्दिर में पुजवाये जाते हैं। सिक्ख लोग अपने को मूर्त्ति-पूजक नहीं बतलाते हैं । अच्छा, मूर्तिपूजक न सही, पुस्तकपूजक तो जरूर हैं।

इसी प्रकार अयोध्या, मथुरा, काशी, द्वारिका, हरिद्वार, अमरनाथ, हिंगला, रणछोड़ आदि की लीला भी आज कल विचित्र है। यह स्थान पूर्व काल में इस कारण तीर्थ कहाते थे कि इन स्थानों पर मनुष्यों के रहने की सामग्री विद्यमान थी परन्तु इस समय वहां वैसे साधन नहीं हैं। जिनको तीर्थों का सारा सार जानना हो वे श्रीमद्भागवत का माहात्म्य देखकर शांति करलें। उसमें नारदजी ने तीर्थों की वह पोल खोली है कि यदि उस समय श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज विद्यमान होते तो आजकल के नाम के सनातनधर्मी नारदजी को 'कट्टर आर्यसमाजी' की उपाधि दिये विना नहीं रहते।

गङ्गानदी—राजा भगीरथ के पुरुषार्थ का चिन्ह है। उस का जल पाचक और निरोगता का देने वाला है। उसका क्षेत्र रम्य और किनारे की वायु बुद्धिवर्द्धक है। इसलिए गङ्गाजल का पान और वायु-सेवन करना चाहिए परन्तु पाप नाशन की बुद्धि से नहीं। पाप बिना भोग नहीं छूट सकते। श्रीकृष्णचन्द्र जी गीता में कहते हैं कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' अच्छे बुरे कर्म सब ही अवश्य भोगने पड़ेंगे।

तीर्थ शब्द और उसके अर्थ

मनुष्य जिनके द्वारा दुःखों से तरे उनका नाम तीर्थ है। पानी डुबाने वाले हैं न कि तारने वाले। हां नौका और पुल का नाम तीर्थ हो सकता है, जिससे मनुष्य नदी या समुद्र से पार जावें।

पाणिनीय मुनि कहते हैं कि 'समानतीर्थवासी' अष्टाध्यायी अ० ४ पा० सूत्र १०८।

अर्थात् जो ब्रह्मचारी एक ही आचार्य से एक ही शास्त्र पढ़ते हों वे आपस में 'समानतीर्थवासी' होते हैं। निपान, (जिसमें पशु पानी पिएं) वेद ऋषि सेवित जल और गुरु को भी तीर्थ कहते हैं। इसलिए गुरु माता पिता आदि की सेवा करना ही तीर्थस्नान है न कि केवल जल में स्नान मात्र। पूर्वकाल में प्रयाग आदि स्थानों में भरद्वाज जैसे ऋषि रहकर मनुष्यों को सदुपदेश देकर अज्ञान से हटा, ज्ञानज्योतिः में प्रवेश कराकर तार दिया करते थे, इसलिए स्थान भी पवित्र समझे जाते थे परन्तु अब वहां पर वैसी दशा नहीं रही अतः अब वे तीर्थ न होकर डुबो देने के साधन बन चुके हैं। बालको! वहां व्यर्थ समय न खोकर अपने माता पिता और गुरु सेवा को ही तीर्थ समझो।

पुराण प्रकरण

पुराने होने से पुराण कहाते हैं। परन्तु पुराणों के ऊपर अटल विश्वास रखने वाले इनको पांचवां वेद मानते हैं। यह पुराण १८ हैं। भागवत दो हैं, १—देवी भागवत जो भक्तों की हैं। २—श्रीमद्भागवत जो कि वैष्णवों की है। इस प्रकार १९ हो जाते हैं। दोनों ही अपनी-अपनी भागवत को व्यास कृत होना बताते हैं, क्योंकि सारे के सारे पुराण व्यास के बनाये कहे जाते हैं। यदि विचार से देखा जावे तो एक भी पुराण व्यासजी का बनाया नहीं है क्योंकि व्यासजी का काल महाभारत के काल के समीप का है, परन्तु इन पुराणों में बुद्धदेव का हाल लिखा है जो व्यासजी के दो ढाई हजार वर्ष पश्चात्

हुए। इसी प्रकार और बहुतसी नवीन बातें लिखी हैं। जैसे कि ईसा की चर्चा। वास्तव में पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों को कहते हैं, जिनमें जगदुत्पत्ति का वर्णन है। पुराण शब्द व्यास से पूर्व भी व्यवहार में लाया जाता था। अश्वमेध के अन्त में पुराणों की कथा सुनना लिखी है। यदि शिव पुराणादि ही प्राचीन पुराण होते तो व्यासजी से पूर्व कौन से पुराण सुने जाते थे? पुराणों के कहे अनुसार तो व्यासजी के उपरान्त कलियुग में अश्वमेध यज्ञ ही वर्जित हो गया। यह भागवत तो वोपदेव की बनाई है। वोपदेव ने अपने बनाये 'हेमाद्रि' ग्रन्थ में यह बात स्वीकार की है कि भागवत पुराण मैंने बनाया। पुराणों में बहुतसी बुद्धि विरुद्ध बातें भरी हैं। जैसे कि एक स्त्री से कांटेदार वृक्ष और सिंह आदि जन्तुओं का उत्पन्न होना क्रूरजी का वायु समान वेग वाले घोड़ों के रथपर चढ़कर ४ मील पर प्रातः-काल से सन्ध्या तक पहुंचना! पूतना का शरीर छः कोस लम्बा होना! अजामिल की असम्भव कथा, सुमेरु पर्वत का ज्योतिष के विरुद्ध परिणाम पृथिवी का उनऊचास कोटि योजन का विस्तार, आदि बहुतसी बातें असम्भव लिखी हैं। यदि भागवत न बना होताहो आजकल लोग श्री कृष्णचन्द्रजी की निन्दा भी नहीं करते। भागवतकार ने उन को चोर, नचकैया और व्यभिचारी आदि बनाकर उनकी खूब हंसी उड़ाई है, परन्तु महाभारत और गीता श्रीकृष्ण महाराज को बड़ा योगी और सदाचारी बताते हैं।

ग्रहप्रकरण।

संसार में एक चक्र ग्रहों का है। इस चक्र में फंस कर भी मनुष्य कभी नहीं निकल पाता। इसका कारण यह है कि लोगों ने इन जड़ सूर्य चन्द्रमा आदि को चेतन मानकर अपने

ऊपर क्रुद्ध और प्रसन्न होने वाला मान रक्खा है। वेदों में 'शन्नो देवी रभिष्टय०' और उद्बुध्यस्वाग्ने० 'आकृष्णेन रजसा' आदि मन्त्र आते हैं। वास्तव में इन सबके अर्थ और ही हैं। तुम नित्य प्रति संध्या करते समय 'शन्नो देवी रभिष्टय०' पढ़कर आचमन करते हो, परन्तु वे लोग कहते हैं। कि इस मन्त्र से शनैश्चर की पूजा करो ? हवन करते समय 'उद्बुध्यस्वाग्ने०' मन्त्र पढ़कर अग्नि को लाते हो, वे कहते हैं कि इससे बुध की पूजा करो। आकृष्णेनरजसा० बतलाता है कि सूर्य की आकर्षण शक्ति से पृथिवी खिंची हुई है और अपनी परिधि पर घूम रही है, परन्तु वे लोग कहते हैं कि इस मन्त्र से सूर्य की पूजा करो। इस ही प्रकार सारे के सारे नवग्रहों के लिये विना सोचे समझे वेद मन्त्र रख छोड़े हैं जो कि उनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। इस विषय पर पूर्व भी लिख आये हैं वहां पर देख लेना।

सूर्य और चन्द्रग्रहण।

सूर्य और चन्द्रग्रहण ज्योतिष विद्या के गणित का फल है। ज्योतिष दो प्रकार का है। एक गणित दूसरा फलित, जिससे तारागण की चाल और ग्रहण आदि जाने जाते हैं, वह गणित तो सत्य है, परन्तु जो दूसरा फलित है सो असत्य है। इस फलित के ही द्वारा आज कल क्रूर और अनुकूल ग्रह बता कर आने वाला दुःख और सुख वताया जाता है, जो नितांत असत्य है। ज्योतिषशास्त्र वतलाता है कि जब सूर्य और भूमि के मध्य में चन्द्रमा आजाता है तो सूर्यग्रहण और सूर्य और चन्द्रमा के बीच में पृथिवी आ जाती है तो चन्द्रग्रहण होता है, इस प्रकार चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशक है इस कारण उसके ऊपर

किसी की छाया नहीं पड़ती परन्तु चन्द्रमा के बीच में आ जाने से पृथिवी वासियों की दृष्टि से सूर्य का कुछ व सब अंश छिप जाता है। ये ग्रहण किसी विशेष राजा व प्रजा के लिए हानिकारक नहीं होते। जो कुछ जलवायु पर बुरा वा भला प्रभाव पड़ता है, वह सब के लिये न्यूनाधिक हानिकारक वा लाभदायक होता है। मनुष्य जो कुछ सुख वा दुःख भोगता है, सो उसके कर्मों का फल है न कि इन ग्रहों का। कर्मों का फल विना भोगे नहीं मिटता, ये ग्रह कर्म फल को नहीं मेंट सकते। ग्रह केवल प्रकाश और उष्णता प्रदान करते हैं सो सबको समानतया प्राप्त हैं।

गरुड़ पुराण।

हिन्दू लोग कहते हैं कि विष्णु भगवान् की सवारी में एक पक्षी "गरुड़" रहता है, उसके नाम से व्यासजी ने एक पुराण बनाया है, जिसका नाम गरुड़ पुराण है। इस पुराण में यह बात विशेष कर बताई गई है कि यह जीवात्मा मर कर कहां जाता है और किस प्रकार फिर दूसरा शरीर धारण करता है। इसमें बतलाया है कि पापी लोगों के मरते समय उनके पास यम के बड़े-बड़े शरीर वाले दूत आते हैं और उस पापी के जीवात्मा को निकाल कर ले जाते हैं। मार्ग में रुधिर और पीव की भरी हुई एक नदी पड़ती है जिसका नाम 'वैतरणी" है। जो मनुष्य गोदान नहीं करता वह उसमें डूबता उछलता रहता है। गौ दान करने वाला उस गौ की पूंछ पकड़ कर पार हो जाता है। उसके लिये पिण्ड देने चाहियें आदि बहुतसी बातें लिखी हैं। बालको! विचारने पर ये सारी बातें कैसी हंसी की सी प्रतीत होती हैं। विचारो तो सही? ये बड़े-बड़े पहाड़ों के सदृश यमराज के दूत इस छोटे से शरीर में कैसे घुसते होंगे, छोटे २

घरों में कैसे जा पाते होंगे! बहुत इकट्ठे होने पर आपस में टकराते होंगे! भला तुमने भी भूगोल विद्या पढ़ी होगी, किसी स्थान पर वैतरणी नदी का हाल भी पढ़ा? इसलिये ये सारी बातें झूठी हैं। जीवात्मा को किसी देहधारी 'चित्रगुप्त' के सामने नहीं जाना पड़ता। अन्तःकरण ही 'चित्रगुप्त' है जिसमें सारे ही अच्छे बुरे कर्मों के संस्कार सदैव बने रहते हैं यह अन्तःकरण प्रत्येक मनुष्य के अपने-अपने कर्मों का साक्षी बना रहता है, यह जीव कर यम नाम वायु में जाता है, और फिर धर्मराज अर्थात् परमात्मा की व्यवस्था से अपने कर्मानुसार योनि को प्राप्त होता है, गरुड़ पुराण का कल्पित यम माननीय नहीं है। दशमे आदि में कठ्या (महाब्राह्मण) को धन देना भी मरे हुओं को सुखकारी नहीं होता। इसका कारण यह है कि किसी अन्य का किया कर्म किसी और को फलदायक नहीं होता। यदि ऐसा हो जावे तो "जो करे सो ही भरे" का ईश्वरीय नियम भंग हो जावे, भला यह भी कोई न्याय संगत बात है कि करे राम और भरे कृष्ण—इसलिए अपने जीते जी जो कुछ करना है करलो मरने पर किसी की आशा मत रक्खो। जैसा करोगे वैसा स्वयं ही भरोगे।

व्रतप्रकरण।

पञ्चमहायज्ञादि करने, सत्य बोलने और चोरी आदि त्यागने की प्रतिज्ञा को 'व्रत' कहते हैं। परन्तु आजकल केवल भूखों मरने को व्रत कहा जाता है। जितने पुराण हैं सब ही अपने-अपने बताये देवताओं के नाम पर व्रत रखना बताते हैं। इस प्रकार सारी की सारी ही तिथियें और वार व्रत रखने के लिए हो जाते हैं। १८ व १९ पुराणों का मानने वाला तो प्रतिदिन ही भूखा रहेगा। क्या विचित्र व्रतों की लीला है!

देखिये ! शिवपुराण में शिव का त्रयोदशी, और चन्द्रमा का सोमवार, सूर्य का आदित्यवार, वैष्णवों की एकादशी, वामन महाराज की द्वादशी, नृसिंह वा अनन्त भगवान की चतुर्दशी, चन्द्रमा की पौर्णमासी, दिग्पालों की दशमी, दुर्गा की नवमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, स्वामी कार्तिक की षष्ठी, नागों की पञ्चमी, गणेश की चतुर्थी, गौरी की तृतीया, अश्वनीकुमार की द्वितीया, आद्या देवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावस्या व्रत के लिए नियत है। सारे ही व्रतों में उपवास (फाका) करने का महाफल है। अब पुराणों के अनुसार सदैव भूखों मरना ही स्वर्गदायक है वा नहीं ? कोई इनसे पूंछे कि क्या परमेश्वर ने अन्नादि मनुष्य के लिए नहीं बनाये—यदि कहो कि बनाये, तो इनको खाकर क्या पुराणों के कहे अनुसार नरक में जावें ? एकादशी व्रत का महात्म्य भी विचित्र है। ब्रह्मलोक में एक वेश्या‡ रहती थी, उसने कुछ अपराध किया। शापवश पृथिवी पर गिरादी गई फिर वह विमान सहित एक राजा के नगर में गिरी। राजा ने पूछा कि कौन है ? उत्तर दिया कि मैं वेश्या हूँ। कोई एकादशी व्रत का फल दे तो ब्रह्मलोक को फिर चली जाऊं, राजा के नगर में ढुंढवाने पर एक शूद्रा अपने स्वामी से पिटकर क्रोध में भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी थी। उस शूद्रा ने कहा, मैं एकादशी जानकर तो भूखी नहीं रही अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई। राजा के नौकर उसको राजा के सामने ले आये। उससे राजा ने कहा तू इस विमान को छूले। उसके छूते ही विमान स्वर्ग को उड़ गया ! यह है बिना जाने एकादशी व्रत का फल। यदि जानकर व्रत करे तो न जाने

‡ ब्रह्मलोक में और वेश्या ?

कितना फल हो ? बालको ! क्या यह कहानी सच्ची हो सक[ती] है ? सहस्त्रों व्रती (व्रत रखने वाले) मिलकर भी एक तिन[का] तक भी ऊपर को नहीं उड़ा सकते । ये सारी बातें मनघड़ंत [हैं] इन पर कदापि वैदिक धर्मियों को विश्वास नहीं करना चाहि[ये] जिस दिन तुमको अजीर्ण (बदहज़मी) हो जावे उसी दिन केव[ल] शरबत पीकर रहो, किन्तु उपवास कभी न हो ।

मारण, मोहन और उच्चाटन ।

बहुत से स्वार्थी लोग मारण (दूसरों को मार डालना) मोहन (अपने वश में कर लेना) और उच्चाटन (दूसरे के चि[त्त] को किसी पर से उचाट दिला देना) का जाल फैला कर बाल[कों] के चरित्रों को बिगाड़ा करते हैं सो ये सारी बातें मिथ्या हैं इन स्वार्थी लोगों ने इन सारी बातों के मन्त्र बना रक्खे हैं इन मन्त्रों पर कभी विश्वास न करो । ये सारी बातें मिथ्[या] होने के अतिरिक्त संसार के आचार विचार बिगाड़ने वा[ली] भी हैं । संसार में सबके शुभचिंतक रहो, मारने की इच्छा त[क] चित्त में मत उत्पन्न करो । दण्ड देनेहारा परमेश्वर और रा[जा] है । तुमको कोई अधिकार नहीं कि तुम किसी को मारक[र] दण्ड दो । ऐसा करने से ईश्वर और राजा दोनों के यहां दण्डि[त] होगे । इसी प्रकार किसी का चित्त किसी प्रिय वस्तु पर [से] बलात् (ज़बरदस्ती) हटा देना भी पाप है । हां, यदि उस व[स्तु] से उसकी कुछ हानि है तो उसको प्रेमपूर्वक व समझा क[र] वैसा करने से रोको यही न्याय है । बालको, तुमको [ऐसे] मनुष्यों से बहुत सावधान रहना चाहिये जो तुमको "जन्तर मन्तर" के बहाने से बहका कर नष्ट करना चाहते हैं । सदै[व] वेद विद्या पर विश्वास करके ऐसे बखेड़ियों से बचे रहो ।

साधुप्रकरण ।

जो अपने मन और इन्द्रियों को बुरे कर्मों से हटा कर सदैव वश में रक्खे उसको साधु कहते हैं। साधु सदैव छल कपट रहित सीधे स्वभाव वाले होते हैं। परन्तु आज कल ऐसे साधु बहुत कम देखने में आते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य पूर्ण वैराग्य प्राप्त करके साधु नहीं बनते, इनमें से सहस्रों में एक दो भी कठिनता से पढ़े लिखे मिलेंगे। इसका विशेष कारण यह है कि वे अपने लिए विद्या की भी आवश्यकता नहीं समझते। यदि किसी विभूति (खाक) रमाए हुए से पूछो कि बाबाजी ! तुम कुछ पढ़े लिखे हो ? तो तुरन्त ही उत्तर मिलेगा कि "अरे साधुओं को पढ़कर क्या करना है।" क्या साधुओं को मुनीमी और तहसीलदारी करनी है ? वे अपनी ज़ुंग में यही समझे हुए हैं कि मुनीमी और तहसीलदारी करने के लिए ही विद्या पढ़ी जाती है ?

यदि उनको अपना उद्देश्य (मक़सद) ज्ञात हो जावे तो वे कभी भी ऐसे अनर्गल शब्द मुख से नहीं निकालें ऐसे ६० लाख के लगभग भिखमंगे भारतवासियों के सिरों का बोझ बन रहे हैं। इन्होंने परमात्मा की प्राप्ति के पुरुषार्थ को छोड़कर केवल द्वार-द्वार फिर कर अन्नादि मांग कर पेट भरना ही पुरुषार्थ समझ लिया है। इन लोगों ने अपने-अपने पृथक्-पृथक् अखाड़े भी बना रक्खे हैं। उनके नाम यह हैं। वैरागी, निरंजनी, उदासी, दादूपंथी, नानकशाही और कबीरपन्थी आदि, इनके अखाड़ों के नाम बहुत स्थावर सम्पत्ति (जायदाद) भी लगी रहती है जिससे ये लोग घोड़े ऊंट आदि बहुतसी सवारी रखते हैं। तीर्थस्थानों पर पर्व के समय ये अखाड़े वाले साधु प्रायः परस्पर लड़ाई झगड़ा करते हैं, जिसके कारण

न्यायशीला गवर्नमेन्ट को बड़ा प्रबन्ध करना पड़ता है। अखाड़े वाले साधुओं से देश का भी उपकार नहीं। ये लो भंग सुलफा और गांजा पीने में अपना समय अधिक व्यती करते हैं इनमें से कुछ सच्चे महात्मा भी हैं जो प्रशंसनीय हैं।

इन भिखमंगों की वृद्धि अधिकतर उन लोगों ने कर रक्खी है, जो इनको दान देना बड़ा ही पुण्य का कार्य्य समझते हैं बालको! दान के अधिकारी तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। ए अपाहिज तथा लूले लङ्गड़े और कुष्ठी आदि, दूसरे परोपका और तीसरे विद्वान्। परन्तु ये लोग इन तीनों में से कोई नहीं, अपाहिज इनमें कोई होगा ही नहीं, वरन् सब हट्टे क देखने में आते हैं। रहा परोपकार सो तो देखलो कि कोई अनाथालय वा गुरुकुल इनका खोला हुआ नहीं है। रही वि त्ता सो तो इनके पास तक नहीं फटकती। एक छोटा नमूना इनकी विद्वत्ता की कथा का आपको सुनाते हैं—कि खाकी (धूली रमाने वाले) का चेला "श्री गणेशाय नमः घोखता हुआ किसी कुए के समीप गया। वह चेला भूल श्रीगनेसाजनमे कहता था! उस कुए पर एक पण्डित सन्ध्या कर को आये थे। उन्होंने उसको अशुद्ध घोखते देखकर कहा अरे साधु! अशुद्ध घोखता है! "श्री गणेशायनमः," कह इतना सुनते ही चेले ने बात अपने गुरु से जाकर कह दी। गु सुनते ही कुएं पर आकर पण्डितजी से बोला "अरे तू मे चेले को बहकाता है? भला तू क्या पढ़ा है? तू तो एक प्रकार का पाठ जानता होगा, हम तीन प्रकार के पाठ जानते हैं सुन, "स्रीगनेसाजन्नमे, स्रीगनेसायन्नमे, और श्रीगनेशायनमे पण्डितजी ने कहा—विद्या की बातें बहुत कठिन हैं, बिना प नहीं आतीं! खाकी ने कहा—चलबे हमने सब विद्वान् देख रखे

मारे हैं, सन्तों का घर बड़ा है। तू क्या जाने वेदशास्त्र पढ़ कर भी सन्तों को न माने तो जानलो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा। यह है इनकी विद्या का नमूना। ऐसे ही साधुओं ने देश को कलङ्कित कर रक्खा।

श्री शङ्कराचार्य ने नास्तिकता को हटाने और वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए प्रबन्ध किया था वह अति उत्तम था, परन्तु उनके मरण उपरान्त ऐसा प्रबन्ध नहीं रहा। उन्होंने १० प्रकार के उपदेशक नियत करके दस ही उनके नाम धर दिये थे। वह दस उपदेशक इस प्रकार के थे—(१) गिरी (२) पुरी (३) सागर (४) भारती (५) वनी (६) तीर्थ (७) आश्रम (८) आरण्य (९) सरस्वती (१०) पार्वती। इनमें से जो पर्वतों पर जाकर प्रचार करें, वे गिरी कहाये, जो नगरों में जाकर प्रचार करें वे पुरी, समुद्रों को पार करके प्रचारार्थ जावें, वे सागर, भारतवर्ष भर में प्रचार करें वे भारती, वनों में प्रचार करें वे वनी तीर्थों में प्रचार करें वे तीर्थ, आश्रमों में जाकर प्रचार करें वे आश्रमी, जगलों में प्रचार करें वे आरण्य और सरस्वती नदी के तट पर रहने वालों को उपदेश सुनाने से सरस्वती कहाते थे। हिमालय पर्वत पर प्रचार करने वाले पार्वती कहाते थे। क्या ही सुन्दर प्रबन्ध था। परन्तु शोक! कि इस प्रबन्ध पर न चल कर अपने-अपने अखाड़े बना डाले। चारों दिशाओं में चार मठ श्री स्वामी शं० चा० जी ने नियत किये थे। यह मठ इसलिए बनवाये थे कि यहां से उपदेशक तैयार होकर निकलें और बाहर देश देशान्तरों में प्रचार करें। वे चार मठ ये हैं शारदा, गोवर्द्धन, जोशी और शृङ्गेरी। ऊपर कहे हुए १० प्रकार के उपदेशक इन ही चारों मठों मे रहते थे और समय समय पर बाहर प्रचारार्थ जाते थे। बालकों! जिस दिन गङ्गा

के पवित्र किनारों पर बाल्मीकि और भारद्वाज की पुनः कुटिय बन जायेंगी, यह कलङ्क जो आज कल के साधुओं के सर प लगा है। सब मिट जायेगा। एवमस्तु !

हमारी अटल श्रद्धा, साधु संन्यासियों पर क्यों है ? इसक मुख्य कारण यह है कि हमारे पूर्वजों और हमने उन्हीं साधु संन्यासियों के वेश में वशिष्ठ, नारद, भरद्वाज विश्वामित्र कपिल; कणाद, गौतम, व्यास, जैमिनि स्वामी शंकराचार्य और स्वामी दयानन्दजी को देखा है ! ऐसे महात्माओं के आं सिर झुकाते-झुकाते हमको करोड़ों वर्ष व्यतीत हो गये हमारे सिर इन महात्माओं के आगे झुकने के अभ्यासी हो गये हैं। इस ही कारण प्रत्येक साधु संन्यासी को देखकर हमार सिर सहसा झुकता है। खरा खोटा देखने तक को समय नह मिलता। परन्तु अब जब कि ऐसे महात्मा नहीं रहे तो हमक सोच विचार कर सिर झुकाना चाहिए, क्योंकि धर्मशा कहता है कि जहां अपूज्य पूजे जाते हैं और पूजनीयों का अना दर होता है, वहां पर अकाल महामारी और अन्य प्रकार भय रहते हैं, इसलिए भङ्गड़ी, गंजेड़ी और दुराचारियों क छोड़कर संन्यासियों की सेवा किया करो। याद रक्खो धूनं रमाने, जटा बढ़ाने, सुलफा पीने, हाथ सुखा लेने, और मौ साधने और चिमटा तूंबा हाथ में लेने से कभी भी कोई तपस नहीं बनता। तपस्वी बनता है द्वन्द्व सहन से अर्थात् धर्मा भूख, प्यास, शीत, गर्मी, सुख, दुःख और निन्दा स्तुति को सह करना। इसलिए ऐसे गुणवालों की सदैव तन मन धन से सेव करो जिससे तुम्हारी विद्या, आयु, यश और बल बढ़े।

पन्थों का वर्णन।

कबीर पन्थी—यह कबीर साहब का चलाया हुआ पन्

है। कबीर साहब के चेले कहते हैं कि–कबीर जी फूलों से उत्पन्न हुए थे! और अन्त में भी फूल हो गये? ब्रह्मा, विष्णु, और महेशादि से भी पूर्व विद्यमान थे। मूर्तिपूजा नहीं करते थे। यह सारी बातें कुछ सार नहीं रखतीं, फूलों से मनुष्य कभी नहीं उत्पन्न हो सकता, अन्त में फूल बन जाना भी असम्भव है। यदि मूर्तिपूजा नहीं करते तो गद्दी, तकिया, खड़ाऊं और पलङ्ग आदि की पूजा क्या मूर्तिपूजा से कम है! इनका ध्यान करना तो विचित्र है। कान मूंदकर जो गुन-गुन का शब्द सुनाई पड़ता है उसको 'अनहद' शब्द कहते हैं, और उस ही गुन-गुन में ध्यान लगाने वाले को संत कहते हैं बस यही ईश्वर का ध्यान है! बालको! कैसी वेद विरुद्ध लीला है। बर्छी के समान तिलक लगाना, लकड़ी की कण्ठी बांधना और सर्वत्र घूमते रहना यही इनका जप तप है! भला इससे और आत्मोन्नति से क्या सम्बन्ध?

नानकपन्थी

गुरु नानक के शिष्य नानकशाही कहाते हैं, गुरु नानक जी पंजाब देश में रहते थे। मुसलमानी समय में पंजाब में संस्कृत विद्या का बहुत कम प्रचार हो गया था। इस कारण गुरु नानकजी भी संस्कृत विद्या नहीं पढ़ पाये थे। यह बात उनके वाक्यों से पाई जाती है। उदासी और निर्मल भी नानकशाही कहाते हैं। गुरु नानकजी से लेकर दसवें गुरु श्रीगोविंदसिंहजी तक जितने गुरु हुए उन सब की वाणी का संग्रह 'ग्रंथसाहब' कहाता है। यही ग्रन्थसाहब इस पंथ की धर्म पुस्तक है, गुरु नानकजी स्वयं तो बड़े ही योग्य और ईश्वर भक्त थे। मुसलमानी समय में इन्होंने बहुत से हिन्दुओं का धर्म बचाया था परन्तु उनके मरने के पश्चात् उनके चेलों

ने उनके विषय में बहुत सी असम्भव अमाननीय बातें लिख डालीं जो कि मानने के योग्य नहीं। जैसे कि नानकजी का ब्रह्मा से मिलना और ब्रह्मा आदि का मान करना आदि बातें सर्वथा त्याज्य हैं। उनके दसवें शिष्य गुरु गोविन्दसिंह जी बड़े वीर प्रतापी हुए। इन्होंने बड़ी वीरता से आर्य जाति की रक्षा की थी। ये लोग 'पञ्च ककार' को भी अपने साथ रखना धर्म समझते हैं। पञ्च ककार ये हैं:—

पहिला 'केश' अर्थात् लम्बे लम्बे बाल जिनको कभी नहीं काटते, दूसरा 'कड़ा' यह लोहे का होता है और हाथ में पहने रहते हैं, तीसरा कच्छा अर्थात् जांघिया, चौथा 'कंघा', जिससे केशों को सुधारते हैं और पांचवां 'कर्द व काचू' एक प्रकार की छुरी। जड़ पूजा से यह भी नहीं बचे, क्योंकि ग्रन्थ साहब की पूजा इनके यहां भी होती है।

दादू पन्थी

दादू जी के अपने वाले दादू पन्थी कहाते हैं। यह दादू जी गुजरात में जन्मे थे और बड़े होने पर अजमेर में रहने लगे। इनके शिष्य 'दादूराम' जपना भी परमधर्म समझते हैं। हा अविद्ये! तूने ओ३म् नाम छुड़ाकर अल्पज्ञों का नाम जपवा दिया।

रामसनेही।

यह पन्थ रामचरण नामक किसी साधु से चला है यह शाहपुरा में जो कि मेवाड़ में है, रहता था। इसने अपने शिष्यों को सारे ज्ञान ध्यान छुड़ाकर केवल 'राम' ही सार है, यही उपदेश दिया। यह भी संस्कृत से शून्य था। बालको! ऐसे पन्थों से सदैव बचो। इसी प्रकार औघड़, चरणदासिये, कूंडापन्थी, कामड़िये, ढंढिये, रामसनेही और सदा सुहागण

आदि वेद विरुद्ध अनेक पन्थ अविद्वानों के चलाये हैं। इन सब से बच कर सत्य सनातन वैदिक धर्म ही सर्वोपरि माननीय है।

गोकुलिये गोसांई।

गोकुलिये गुसाइयों का मत, तैलङ्ग देशवासी एक ब्राह्मण से जिसका नाम लक्ष्मण भट्ट था चला है। इसने स्त्री के होते हुए काशी में संन्यास ले लिया था और पूछने पर यह कह दिया था कि मेरा विवाह नहीं हुआ है। दैवयोग से उसके माता पिता और स्त्री ने इसका पता पा लिया और काशी में इसको लेने के लिये आ गए। भेद खुल जाने पर इसको फिर गृहस्थ बनना पड़ा, अब अपने देश को गये तो जाति वालों ने इसको जाति से निकाल दिया। फिर तो यह इधर उधर घूमने लगा। 'चुर्णारगढ़' (चुनारगढ़) जो काशी के समीप है। वहां के चम्पारण्य (चम्पारन) जंगल में फिर रहा था कि इसको एक अनाथ बालक पड़ा हुआ मिल गया। इस बालक को इन स्त्री पुरुषों ने पाल लिया, बहुत दिनों तक काशी में रहते रहे। यह लड़का जब बड़ा हुआ तो माता पिता का देहान्त हो गया इसने काशी में विद्या पढ़नी आरम्भ कर दी। थोड़े काल के उपरान्त कहीं अन्यत्र जाकर विष्णु स्वामी के मन्दिर में जाकर चेला हो गया। यहां से भी कुछ खटपट हो गई, अतः फिर काशी लौट आया। यहां आकर किसी जाति बहिष्कृत ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लिया। उस स्त्री को लेकर फिर उसी विष्णु स्वामी के मन्दिर में पहुँचा। परन्तु इसको गुरु ने इस कारण से निकाल दिया कि तू ने संन्यास छोड़कर स्त्री क्यों कर ली? इस ही ने फिर ब्रज देश में आकर अपना अड्डा जमाया और भोले भाले लोगों से कहने लगा 'श्रीकृष्णजी'

मुझ को मिले हैं और कहा है कि दैवी जीव मृत्यु लोक में आये हैं, उनको ब्रह्म सम्बन्ध कराके गोलोक में भेजो, इत्यादि। इस प्रकार इसने सीधे साधे लोगोंकोबहका कर ८४ वैष्णव बना लिए और श्रीकृष्णः शरणं मम आदि मन्त्र गढ़ लिये। इसको ही वल्लभ मत कहते हैं। इन वल्लभियों ने भी देश में बड़ी अविद्या फैलाई है। देखो! किस प्रकार तन मन धन श्री गुसाईंजी के अर्पण करने का जाल बिछाकर संसार में धर्म आचार और सौभाग्य ये तीनों ही नष्ट कर डाले हैं। इनका मुख्य उद्देश्य चेला चेली बनाना है। चेली अधिक बनाने का कारण भी मर्मभेदी है। ये लोग सदैव आनन्द विलास में मग्न रहते हैं। धर्मोद्धार की इनको कुछ भी चिंता नहीं। इन्होंने एक गोलोक की कल्पना कर रखी है जिसमें बताते हैं कि केवल कृष्ण ही एक पुरुष है, अन्य सब स्त्रियां हैं। वाह रे गोलोक! इस ही प्रकार और भी इसकी बहुत सी वेद विरुद्ध बातें हैं जो माननीय नहीं। जैसे चेली चेलों को अपना झूंठा खिलाना, इसको यह प्रसादी बोलते हैं और पान चाब कर उसका पीक एक चांदी के पात्र में धर उसका नाम "खासप्रसादी" रखते हैं, यह प्रसादी है या उगलन! जिस मत में उगलन भी प्रसादी मानी जाती हो, बालको! उसको दूर से ही हाथ जोड़ कर दूर रहो।

स्वामी नारायण मत।

यह मत एक सहजानन्द नाम के ब्रह्मचारी का चलाया हुआ है, यह गुजरात काठियावाड़ में घूमता था, वहां के लोगों को विद्याहीन जान कर इसने अपना जाल फैलाना आरम्भ कर दिया। कुछ सीधे साधे इसके फंदे में फँस गये। उसके चेलों ने परस्पर सलाह करके यह प्रसिद्ध कर दिया कि सहजानन्द

नारायण का अवतार है बड़ा प्रसिद्ध है, भक्तों को चतुर्भुज रूप धारण करके साक्षात् दर्शन भी देता है। जब कोई महा मूर्ख दर्शनाभिलाषी बहुत सा धन देकर दर्शन करना चाहता है तो ये अकेले उसको एक अंधेरी कोठरी में बैठा और उसके शिर पर मुकुट रखकर हाथों में शङ्ख चक्र देकर अपने हाथों में भी गदा और पद्म थाम कर पीछे से अपने हाथ भी उसके हाथों में मिला उसको दर्शन करा देते है। वह भोला इस कपट को न समझ कर साक्षात् विष्णु जानकर खूब मुंडता, ज्योंही दर्शन करने वाला बाहर आता यह भी अँधेरी कोठरी से झट निकल कर अपनी गद्दी पर आन बैठता, उस समय चेले कहते कि देखो वहां विष्णु भगवान् और यहां पर नर रूप धारण किये हुये विराजमान हैं। भक्त को और भी श्रद्धा बढ़ती थी, इसी प्रकार इसके मत की जड़ जम गई। फिर क्या था बहुत से धनी पुरुष चेले बन गये, ये लोग भी वेद मत से सैंकड़ों कोस दूर पड़े हैं। इसीलिये अपने को सत्सङ्गी और दूसरे कुसङ्गी कहते हैं और दूसरे धर्मात्मा को भी नीच कहते हैं और स्वयं अधर्मी भी श्रेष्ठ कहाते हैं। जब इनके चेलों में से कोई मरे तो उसको कुंए में डाल देते हैं और कहते हैं कि स्वामी सहजानन्द वैकुण्ठ को ले गये इस ही प्रकार नये नये ढोंग रच कर वह धन हरण करते हैं। बालको! ऐसों को भी दूर से प्रणाम करते रहो इनके समीप जाने की इच्छा मत करो। इस प्रकार माधव-मत की भी लीला समझो। ये सारे के सारे ही वेद विरोधी होने से त्याज्य हैं।

ब्राह्मसमाज।

इस समाज में प्रायः अंग्रेजी पढ़े लिखे बंगाली हैं इन्होंने कुछ सुधार भी किया है, परन्तु वैदिक धर्म को अत्यन्त

हानि पहुंचाई है। इनमें अपने ऋषि मुनियों की ममता न्यून है। जिन ऋषियों का रुधिर इनके हृदय में है, उनको ये सदैव जंगली बतलाया करते हैं। शोक! कि जिस जननी जन्म भूमि का अन्न जल खा पीकर समर्थ हुए उसका अपमान करना इनका मुख्य उद्देश्य है। ये अपने देश के रहन सहन को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ईसाई मुसलमानों के साथ खाना पीना भी बराबर करते हैं। विवाह सम्बन्ध भी कर लेने में कोई हानि नहीं समझते। निदान यह लोग आर्य धर्म को ढकोसला और ईसाई धर्म को सर्वोपरि समझते हैं यही कारण है कि यह समाज अब तक उन्नति नहीं कर पाया। उन्नति करता भी कैसे? क्या कोई अपने माता पिता की निन्दा करके सुखी रह सकता है? कदापि नहीं।

विशेष वक्तव्य।

बालको! जब से अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार इस देश में हुआ है तब से प्रत्येक बाबू किसी न किसी सोसायटी (समिति) में अपना नाम लिखा लेना सभ्यता का चिह्न समझता है। जिस प्रकार हमारे देश में यह विचार बहुत पुराना चला आता है कि निगुरा मरना महापाप है। ठीक इसी तरह अंग्रेजी विचार भी है कि बिना किसी समाज में सम्मिलित हुये जेण्टिलमैनी में कुछ कमी रहती है। हम इस विचार को बुरा नहीं समझते परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर आज कल के बाबू लोग समाजों में सम्मिलित होते हैं उस को घृणित दृष्टि से देखते हैं। यह उद्देश्य क्या है, सो तुम सुनो—

वे लोग जिनको अपने पूर्वजों से प्रेम नहीं है वेद विद्या के गुणों से अपरिचित हैं। जिन्होंने सदाचार होटल में खाने का ही नाम रख छोड़ा है। ऋषि मुनियों को जंगली बताना

उनका स्वाभाविक धर्म सा हो गया है। चारों ओर दृष्टि उठा कर देखते हैं कि समाज में सम्मिलित हों! कैसी समाज में सम्मिलित हों? जिसमें संध्या न करनी पड़े, हवन का नाम तक न लेना पड़े, स्नान करना भी अपनी इच्छा पर निर्भर हो, गौ मांस तक खालें तो भी कुछ सामाजिक हानि न हो, वेश्या नचालें, मदिरा पीलें, जुआ खेल लें परन्तु तब भी सभा के सदस्य (मेम्बर) बने रहें। ऐसी निठल्ली सभा कहां से आवे? जिसको न धर्म से काम न कर्म से। क्लब में बैठे हुये अंटे खेला करें और कुछ समय बच रहे तो समाचार पत्र देखलें, वह भी जी बहलाने को। आर्य वीरो! क्या ऐसे आलसियों की दशा देखकर तुम को खेद न होगा? देखो किस प्रकार भ्रातृत्व (ब्रदरहुड) की ड्योंडी पीट कर देश को कोरा नास्तिक और कृतघ्न बना रहे हैं। ऐसे समाजों की भी अभागे भारत में क... नहीं है। जब सारा देश ही आलस्य में पड़ा हो तो ऐसे निठल्ले समाजों की क्यों कर कमी हो? ये समाजें संसार को अपना समझें परन्तु न जाने आर्यसमाज को क्यों पेट भर कोसते हैं? क्या इसलिये कि वो उन के कपट को सर्व साधारण के सामने खोल देता है? क्या इसलिये कि उनके थूकापन्थ की पोल खोलता है? क्या इसलिये कि उनके ब्रदरहुड को यह उनका एक छल बता कर ऋषिसन्तानों को उनके जाल से बचाता है? आर्य-वीरो! ऐसी निठल्ली समाजों की कुछ चिन्ता मत करो इनके सुधार का यत्न किये जाओ। परमात्मा तुम को कृतकार्य करेंगे।

ग्यारहवां समुल्लास समाप्त हुआ।

बारहवां समुल्लास

इस समुल्लास में नास्तिकों के जो भेद हैं—एक चार्वाक, सरा बौद्ध और तीसरा जैन, इनका मत दिखलाते हैं:—

चार्वाक–मत ।

यह मत बृहस्पति नामक पुरुष का चलाया हुआ है। वेद, ईश्वर और यज्ञादि कर्मों को भी नहीं मानता था। इस सिद्धांत यह है कि जब तक जीवे सुख से जीवे, एक दि मरना सब को है। मरने के उपरांत पुनर्जन्म नहीं होता, शरी से भिन्न कोई आत्मा नहीं, चारों भूतों के संयोग से ही शरी में चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। इसलिये मरने के उपरांत कोई सुख दुःख भोगने वाला रहता है और न कोई भुग वाला है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त और अनुमाना नहीं मानता * ।

वैदिक–मत ।

ये पृथ्वी आदि जड़ पदार्थ हैं। जड़ से कभी चेतन उत्प नहीं होती जैसे माता पिता के संयोग से देह की उत्पति हो है, न कि जीव की। सृष्टि के आदि में मनुष्यों के शरीर आकृति बिना कर्त्ता परमेश्वर के नहीं बन सकती। मद समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, क्योंकि चेतन को होता है जड़ को नहीं। वस्तुओं के अप्रत्यक्ष होने नाश कहते हैं अभाव को नहीं। जड़ शरीर और चेतन आत के संयोग को जन्म और इन दोनों के वियोग को मरण क हैं। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान आदि और भी प्रमाण है

* चार्वाक शब्द के अर्थ ये हैं जो बोलने में प्रगल्भ हो।

पुनर्जन्म वेदानुकूल है। भोगने वाला जीव और भुगाने वाला ईश्वर है।

बौद्ध–मत।

बुद्ध देव के मानने वाले बौद्ध कहाते हैं। बौद्धों और चार्वाक में कुछ भेद है। चार्वाक लोग देह की उत्पत्ति के साथ जीव की भी उत्पत्ति और देहान्त के होने पर जीव का भी अन्त होना मानते हैं। पुनर्जन्म इनके मत में नहीं होता, केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं। बौद्ध लोग जीवात्मा को अनादि, पुनर्जन्म जीव की मुक्ति, परलोक और प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण मानते हैं। परन्तु नास्तिकता वेद ईश्वर की निन्दा और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं है आदि बातों में तीनों एक से ही हैं। ये लोग अपने को 'बौद्ध' इसलिये कहते हैं कि जो बुद्धि में आ जाता है सो ही मानते हैं। बौद्ध चार प्रकार के हैं:—एक "माध्यमिक" दूसरे "योगाचार" तीसरे "सौत्रान्तिक" और चौथे "वैभाषिक"।

पहला "माध्यमिक"—शून्य को ही मानता है अर्थात् जगत् कुछ नहीं सब शून्य ही शून्य है। जैसे घड़ा बनने से पहले शून्य था, घड़ा टूट जाने पर भी शून्य होगा, अतः बीच में भी शून्य रहेगा।

दूसरा "योगाचार"—बाहर शून्य और भीतर वस्तुओं का ज्ञान होना मानता है। जैसे घड़े का ज्ञान आत्मा में है तभी बाहर वाले घड़े को मनुष्य कहता है, यह घड़ा है।

तीसरा–"सौत्रान्तिक"—बाहर के पदार्थों को अनुमान से जाना हुआ मानता है क्योंकि किसी पदार्थ का सम्पूर्णतया प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु थोड़े का होता है शेष अनुमान से ॥ ॥ जाता है। इसका ऐसा मत है।

चौथा "वैभाषिक"–इसका मत यह है कि पदार्थों
बाहर ही प्रत्यक्ष होता है, भीतर नहीं। जैसे कहते हैं कि '
नीला घड़ा है' ऐसा जानने में नीले घड़े वाली आकृति (सू
बाहर प्रतीत होती है। इनका आचार्य एक ही है, प
शाखायें चार हो गई हैं।

बौद्धों की पूजा।

बौद्ध लोग बुद्ध भगवान् की पूजा करते हैं। दूसरी पूजा इन
द्वादशायतन पूजा कहाती है। द्वादशायतन पूजा यह है:–पांच
ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन ही का सत्
करना बताते हैं।

संसार को दुःखरूप और क्षणिक कहते हैं। अर्थात् संसा
में कोई वस्तु सुख देने वाली नहीं और प्रत्येक वस्तु प्रत्येक क्ष
में बदलती रहती है। जिन तीर्थङ्करों को जैन मानते हैं उन
बौद्ध भी मानते हैं।

वैदिक धर्म।

यदि सब ही शून्य है तो शून्य का जानने वाला भी शू
होगा, सो ठीक नहीं। इसलिये संसार में ज्ञाता, ज्ञेय औ
ज्ञान तीनों विद्यमान हैं। प्रत्येक वस्तु का ज्ञान आत्मा में रह
है और वस्तु बाहर रहती है। यदि बाहर कुछ न रह कर स
कुछ भीतर ही रहे तो क्या पर्वत किसी की आत्मा के भीत
आ सकता है? अतः पर्वत बाहर और पर्वत का ज्ञान भीत
रहता है। जितने घट आदि पदार्थ हैं, उन सब का प्रत्यक्ष होत
है। यदि सारे घट का प्रत्यक्ष न हो तो यह कहना नहीं
बनता कि 'यह घड़ा' है प्रत्युत यह कहते कि 'घड़े का ए
भाग है' इस लिये सारी वस्तु का प्रत्यक्ष होता है सारे पदार्थ

…णिक नहीं जो ऐसा हो तो किसी भी किए हुए कार्य का …न रहे, क्योंकि ज्यों ही कार्य किया गया त्यों ही वे कार्य …र ज्ञान क्षणिक होने से बदल गये, फिर याद किस को और …सकी रहे ? इसलिये क्षणिकवाद ठीक नहीं है। सब संसार …ब ही दुःख है सो ठीक नहीं, क्योंकि विना सुख के दुःख …ं होता जैसे विना रात्रि के दिन नहीं होता और बिना दिन रात्रि नहीं होती। इसलिये संसार में दुःख सुख दोनों हैं। …मात्मा के अतिरिक्त कोई तीर्थङ्कर पूजनीय नहीं। यह …क सिद्धान्त है।

बौद्ध लोग शङ्कराचार्यजी के समय से इस भारतवर्ष में …त न्यून रह गये हैं। चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, …स्तान, ब्रह्मा और लङ्का में प्रायः बौद्ध ही रहते हैं, अन्य …नों में भी थोड़े २ रहते हैं। श्री शङ्कराचार्यजी से पूर्व यह …भारतवर्ष बौद्धधर्म स्वीकार कर चुका था। स्वामी शङ्करा- …र्यजी की महती कृपा से यह नास्तिकता यहां से दूर हुई।

जैन—मत।

जिन देव के मानने वाले होने से जैन कहाते हैं। इनके दो … होते हैं। एक श्वेताम्बर और दूसरे दिगम्बर। ये भी …क और बौद्धों के समान वेद और सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को … मानते। यज्ञादि कर्म भी व्यर्थ बताते हैं।

जैनी लोग छः * द्रव्य मानते हैं - धर्म, अधर्म, आकाश …ल, जीव और काल।

---

* वैदिक धर्मी ६ द्रव्य मानते हैं। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु आकाश, दिशा, आत्मा और मन। काल की सत्ता को नहीं मानते व्यवहार में लाने के लिये मानते हैं।

ये लोग कहते हैं कि यह जीव ही परमेश्वर हो जाता जितने ये तीर्थङ्कर हुवे हैं वे सब मुक्त होकर ईश्वर बने हैं। इनके छः—नाम हैं:—सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हन् केवली, तीर्थ और जिन। ये ईश्वर को इसलिए नहीं मानते कि उसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं अर्थात् यह देखा, सुना, सूंघा, छुआ, चक्खा नहीं जाता विना प्रत्यक्ष के अनुमान भी नहीं होता प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं तो शब्द प्रमाण भी नहीं हो अर्थात् वेदादि भी उसको नहीं बता सकते। ये लोग ऋषभ से लेकर महावीर पर्यन्त * २४ तीर्थङ्करों को ही मानते हैं।

जैन ग्रन्थों की कुछ विचित्र बातें।

इन की पुस्तक "रत्नसागर भाग" के पृष्ठ १५६ पर है प्रत्येक वनस्पति के जीव शरीर की लम्बाई एक सहस्र * होती है और आयु दश सहस्र वर्ष की। शंख कौड़ी जूं आदि का शरीर ४८ कोश का होता है। आयु बार की होती है।

रत्नसार भाग के पृष्ठ १५० पर लिखा है कि बीछू मक्खी एक एक योजन के शरीर वाले होते हैं। आयु

---

* २४ तीर्थङ्कर—(१) ऋषभदेव (२) अजितनाथ (३) सम्भ (४) अभिनन्दन (५) सुमतिनाथ (६) पद्मनाथ (७) पार्श्वनाथ (८) (९) सुविधिकथ (१०) शीतलनाथ (११) श्रेयांसनाथ (१२) (१३) विमलनाथ (१४) अनन्तनाथ (१५) धर्मनाथ (१६) शां (१७) कुथुनाथ (१८) अमरनाथ (१९) मल्लीनाथ (२०) निसुव्रत नेमिनाथ (२२) नेमिनाथ (२३) पार्श्वनाथ (२४) महावीर स्वामीः

* जैनियों का योजन दश सहस्र कोस का होता है।

महीने की होती है। जलचर मच्छी आदि का शरीर एक करोड़ कोश का लिखा है और आयु भी १ करोड़ पूर्व वर्ष की जानी लिखी है। हाथी का शरीर दो कोश से नौ कोश तक का होता है आयु ८४ सहस्र वर्षों की होती है। जलचर भंजों का शरीर एक करोड़ कोस का होता है और आयु एक करोड़ पूर्व वर्षों का होता है इसी प्रकार इस पृथिवी का विस्तार जिस पर हम रहते हैं असंख्य कोशों का बतलाया गया है।

जैनियों के लिये छः कर्म वर्जित हैं।

१-दूसरे के मत की बड़ाई, २-दूसरे मत वालों को नमस्कार, ३-अन्य मत वालों के साथ बोलना, ४-अन्य मत वालों के साथ व्यवहार करना, ५-उनको अन्न वस्त्रादि देना, ६-उनकी प्रतिमाओं को पूजने के लिये पुष्पादि देना। देखो विवेकसार पुस्तक पृष्ठ २२१।

इनका मत यह भी है कि जितने हरि हर कृष्णादि देव हैं सब कुदेव होने से नरक में गये। यह कहते हैं कि जो कोई ऐसा कहें कि हमारे और अन्य धर्म वाले साधुओं में भी धर्म्म है वह नरक में जावेगा। जैन साधु अधर्मी भी दूसरे धर्मात्मा साधु से अच्छा है।

जैनों की मुक्ति का वर्णन।

रत्नसार भाग पृष्ठ २३ पर लिखा है कि ऊर्ध्वलोक में एक शिलास्थान है। यह स्वर्गपुरी से भी ऊपर ४५ लाख योजन लम्बी इतनी ही पोली तथा ८ योजन मोटी है। मोती से भी अधिक उज्ज्वल है। यह शिला १४ वें लोक की शिखा पर है और इसके ऊपर शिवपुर धाम है। उस में भी मुक्त जीव

आनन्द करते है। इस सिद्ध शिला पर ही मुक्त जीव
करते हैं।

श्राद्ध दिनकृत्य पुस्तक के १३ वें पृष्ठ पर लिखा
बावड़ी, कुआं और तालाब नहीं बनवाना चाहिये। रत्न
पुस्तक के पृष्ठ १०४ पर लिखा है कि बगीचा लगाने से
को एक लक्ष पाप लगता है! श्वेताम्बर जैनों में से जो ढू
कहाते हैं वे भोजन और स्नान के समय को छोड़ निरन्तर
से पट्टी बांधे रहते हैं। रत्नसार भाग पृष्ठ १०४ पर लि
कि शरीर के मैल को न उतारे न खुजलावे।

जैन तीर्थंकरों के शरीर के परिमाण

रत्नसागर भाग पुस्तक के पृष्ठ १३७-१३८ पर लिख
कि (१) ऋषभदेव का शरीर ५०० * धनुष लम्बा है
८४००००० (चौरासी लाख) पूर्व वर्ष की आयु है। (२)
अजितनाथ का ४५० धनुष लम्बा शरीर है। बहत्तर लाख
वर्ष की आयु है (३) सम्भवनाथ का ४०० धनुष् परिमित
शरीर और साठ लाख पूर्व वर्ष की आयु है इस ही प्रकार
अन्य तीर्थङ्करों का भी शरीर है। इनके यहां तीन कोस
शरीर मनुष्य का भी लिखा है कुरुक्षेत्र में ८४ सहस्र
लिखी हैं।

(सारांश)

वैदिक धर्मी इन सब बातों को मिथ्या मानते हैं इनमें
की सारी ही गाथा असम्भव दोष से दूषित है। जीव
ईश्वर नहीं बन सकता और न ईश्वर जीव बन सकता
पृथिवी का विस्तार भी भूगोल विद्या के विरुद्ध है। ऐसे

* अपने हाथ से ३॥ हाथ लम्बा धनुष होता है।

बिच्छू और जूं आदि के शरीर का विस्तार भी महा असम्भव है कुआं, बावड़ी और बगीचा बनवाने और लगाने को मना करना भी ईश्वर की सृष्टि को दुःख देना है स्नान न करना भी परम अपवित्रता है। मुख से पट्टी बांधना भी कुछ कम अज्ञान नहीं है। मनुष्य के शरीर का विस्तार २ कोस का होना भी असत्य है। कुरुक्षेत्र में ८४ सहस्र नदियों का होना भी भूगोल विद्या के विद्वान् विचारें। अपने धर्म के पापी को अच्छा कहना और दूसरे धर्मात्मा भी बुरे, यह कितना पक्षपात है? सिद्ध शिला भी एक विचित्र प्रलोभन है।

आस्तिक और नास्तिक का संवाद

इसके आगे "प्रकरण रत्नाकर" के दूसरे भाग में आस्तिक और नास्तिक के संवाद के प्रश्नोत्तर यहां लिखते हैं जिसको बड़े २ जैनियों ने अपनी सम्मति के साथ माना और मुम्बई में छपाया है। (नास्तिक) ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता जो कुछ होता है वह कर्म से। (आस्तिक) जो सब कर्म से होता है तो कर्म किस से होता है? जो कहो कि जीव आदि से होता है तो जिन श्रोत्रादि साधनों से जीव कर्म करते हैं वह किन से हुए? जो कहो कि अनादि काल और स्वभाव से होते हैं तो अनादि का छूटना असम्भव होकर तुम्हारे मत में मुक्ति का अभाव होगा। जो कहो कि प्रागभाववत् अनादि शान्त है तो विना यत्न के सब के कर्म निवृत्त हो जायेंगे। यदि ईश्वर फलप्रदाता न हो तो पाप के फल दुःख को नीच अपनी इच्छा से भी कभी नहीं भोगेगा। जैसे चोर आदि चोरी का फल दण्ड अपनी इच्छा से नहीं भोगते वैसे ही परमेश्वर के भुगाने से जीव पाप और पुण्य के फलों को भोगते हैं, अथवा कर्मसंकर हो जायगे, अन्य के कर्म

अन्य को भोगने पड़ेंगे। (नास्तिक) ईश्वर अक्रिय है क्योंकि जो कर्म करता होता तो कर्म का फल भी भोगना पड़ता। इसलिए कैवल्य प्राप्त मुक्तों को अक्रिय मानते हैं, वैसे तुम भी मानो (आस्तिक) ईश्वर अक्रिय नहीं, किन्तु सक्रिय है, जो चेतन है तो कर्त्ता क्यों नहीं और जो कर्त्ता है तो वह क्रिया से पृथक् कभी नहीं हो सकता। जैसे तुम कृत्रिम बनावट के ईश्वर तीर्थङ्कर को जीव से बने हुए मानते हो इस प्रकार के ईश्वर को कोई भी विद्वान नहीं मान सकता क्योंकि ईश्वर बने तो अनित्य और पराधीन हो जाय क्योंकि ईश्वर बनने के प्रथम जीव था पश्चात् किसी निमित्त से ईश्वर बना तो फिर भी जीव हो जायगा अपने जीवत्व स्वभाव को कभी नहीं छोड़ सकता क्योंकि अनन्त काल से जीव है और अनन्त काल तक रहेगा, इसलिए इस अनादि स्वतः सिद्ध ईश्वर को मानना योग्य है। देखो! जैसे वर्त्तमान समय में जीव पाप पुण्य करता सुख दुःख भोगता है, वैसे ईश्वर कभी नहीं भोगता जो ईश्वर क्रियावान् न होता तो इस जगत् को कैसे बना सकता? जो कर्मों को प्रागभाववत् अनादि शान्त मानते हो तो कर्म समवाय सम्बन्ध नहीं रहेगा जो समवाय सम्बन्ध से नहीं वह संयोग से उत्पन्न होके अनित्य होता है जो मुक्ति में क्रिया हीन मानते हो तो मुक्त जीव ज्ञान वाले होते हैं वा नहीं? जो कहो होते हैं तो अन्तः क्रिया वाले हुए या मुक्ति में पाषाणवत् जड़ हो जाते हैं। एक ठिकाने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा नहीं करते तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अन्धकार और बन्धन में पड़ गए। (नास्तिक) ईश्वर व्यापक नहीं है। जो व्यापक होता तो सब वस्तु चेतन क्यों नहीं होती? और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि की उत्तम, मध्यम, निकृष्ट अवस्था क्यों है क्योंकि सब में ईश्वर एकसा

व्याप्त है तो छुटाई बड़ाई न होनी चाहिए । (आस्तिक) व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्याप्य एकदेशी और व्यापक सर्वदेशी होता है। जैसे आकाश सब में व्यापक है और भूगोल और घट पटादि सब व्याप्य एक देशी हैं जैसे पृथिवी आकाश एक नहीं वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं जैसे सब घट पटादि में आकाश व्यापक है और घट पटादि आकाश नहीं हैं। वैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होते जैसे विद्वान् अविद्वान् और धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर नहीं होते । विद्यादि सद्गुण और सत्यभाषणादि कर्म सुशीलतादि स्वभाव के न्यूनाधिक होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज बड़े छोटे माने जाते हैं। वर्णों की व्याख्या जैसी "चतुर्थ समुल्लास" में लिख आए हैं वहां देख लो। (नास्तिक) जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती तो माता पितादि का क्या काम ? (आस्तिक) ऐश्वरीय सृष्टि का ईश्वर कर्त्ता है, जीव सृष्टि का नहीं जो जीवों के कर्त्तव्य कर्म हैं, उन को ईश्वर नहीं करता किन्तु जीव ही करता है जैसे वृक्ष, फल, ओषधि, अन्नादि ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं उनको लेकर मनुष्य न पीसे न कूटे रोटी आदि पदार्थ न बनावे और न खावे तो क्या ईश्वर उसके बदले इन कामों को भी करेगा ? और जो न करे तो जीव का जीवन भी न हो सके इसलिये आदि सृष्टि में जीव के शरीरों और सांचे का बनाना ईश्वराधीन पश्चात् उनसे पुत्रादि की उत्पत्ति करना जीव का कर्त्तव्य काम है। (नास्तिक) जब परमात्मा शाश्वत तीनों कालों में (वर्तमान) चिदानन्द ज्ञानस्वरूप है तो जगत् के प्रपञ्च और दुःख में क्यों पड़ा ? आनन्द छोड़ दुःख का ग्रहण, ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता, ईश्वर ने क्यों किया ? (आस्तिक) परमात्मा

किसी प्रपंच और दुःख में नहीं गिरता न अपने आनन्द को छोड़ता है, क्योंकि प्रपंच और दुःख में गिरना जो एकदेशी हो उसका हो सकता है, सर्वदेशी का नहीं। जो अनादि, चिदानन्द ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत् को न बनावे तो अन्य कौन बना सके, जगत् बनाने का जीव में सामर्थ्य नहीं और जड़ में स्वयं बनने का सामर्थ्य नहीं, इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत् को बनाता और सदा आनन्द में रहता है जैसा परमात्मा परमाणुओं से सृष्टि करता वैसे माता-पिता रूप निमित्त कारण से भी उत्पत्ति का प्रबन्ध (नियम) उसी ने किया है। (नास्तिक) ईश्वर मुक्तिरूप सुख को छोड़ जगत् के धारण और प्रलय करने के बखेड़ों में क्यों पड़ा ? (आस्तिक) ईश्वर सदा मुक्त होने से तुम्हारे साधनों से सिद्ध हुए तीर्थंङ्करों के समान एक देश में रहने हारे बन्ध पूर्वक मुक्ति से युक्त सनातन परमात्मा नहीं है जो अनन्तस्वरूप गुण कर्म स्वभावयुक्त परमात्मा है वह इस किञ्चिन्मात्र जगत् को बनाता धारता और प्रलय करता हुआ भी बन्ध में नहीं पड़ता, क्योंकि बन्ध और मोक्ष सापेक्षता से है। जैसे मुक्ति की अपेक्षा से बन्ध और बन्ध की अपेक्षा से मुक्ति होती है। जो कभी बद्ध नहीं था वह मुक्त क्योंकर कहा जा सकता है ? और एक देशी जीव हैं वेही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं। अनन्त, सर्वदेशी, सर्वव्यापक ईश्वर बन्धन वा नैमित्तिक मुक्ति के चक्र में जैसे कि तुम्हारे तीर्थङ्कर हैं कभी नहीं पड़ता इसलिए वह परमात्मा सदैव मुक्त कहाता है। (नास्तिक) जीव कर्मों के फल ऐसे ही भोग सकते हैं। जैसे भांग पीने के बाद मद को स्वयमेव भोगता है इसमें ईश्वर का क्या काम (आस्तिक)–जैसे बिना राजा के डाकू लम्पट चोरादि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी व कारागृह में नहीं जाते न वे जाना

चाहते हैं। किन्तु राज्य की न्याय व्यवस्थानुसार बलात्कार से पकड़ कर यथोचित राजा दण्ड देता है। इसी प्रकार जीव को भी ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से स्वकर्मानुसार यथा योग्य दण्ड देता है क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के फल को भोगना नहीं चाहता। इसलिये अवश्य परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिए। (नास्तिक) जगत एक ईश्वर में नहीं किन्तु जितने मुक्त जीव हैं वे ईश्वर हैं। (आस्तिक) यह कथन सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो तो पुनः बन्ध में अवश्य पड़े क्योंकि वे स्वाभाविक सदैव मुक्त नहीं। जैसे तुम्हारे चौबीस तीर्थङ्कर पहले बद्ध थे पुनः मुक्त हुए फिर भी बन्ध में अवश्य गिरेंगे और जब बहुत ईश्वर हैं तो जैसे जीव अनेक होने से लड़ते भिड़ते फिरते हैं वैसे ईश्वर भी लड़ा करेंगे। (नास्तिक) हे मूढ़! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं किन्तु जगत् स्वयं सिद्ध है (आस्तिक) यह जैनियों की कितनी बड़ी भूल है? भला बिना कर्त्ता के कोई कर्म बिना कर्म के कोई कार्य्य जगत् में होता दीखता है? यह ऐसी बात है कि जैसे गेहूँ के खेत में स्वयं सिद्ध पिसान रोटी बन के चली जाती हो, कपास, कपड़ा, अङ्गरखा, दुपट्टा, धोती, पगड़ी आदि बन के कभी नहीं आते। जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्त्ता के बिना यह विविध जगत् और नाना प्रकार की रचना विशेष कैसे बन सकती? जो हठ धर्म से स्वयं सिद्ध जगत् को मानों तो स्वयं-सिद्ध उपरोक्त वस्त्र आदिकों. को कर्त्ता के बिना प्रत्यक्ष कर दिखलाओ, जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमाण शून्य कथन को कौन बुद्धिमान् मान सकता है? (नास्तिक) ईश्वर विरक्त है वा मोहित? जो विरक्त है तो जगत् के प्रपंच में क्यों पड़ा, जो मोहित है तो जगत् बनाने को समर्थ नहीं हो

सकेगा। (आस्तिक) परमेश्वर में वैराग्य व मोह कभी नहीं घट सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह किसको छोड़े और किसको ग्रहण करे। ईश्वर से उत्तम वा उसको अप्राप्त कोई पदार्थ नहीं है इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता। वैराग्य और मोह का होना जीव में घटता है ईश्वर में नहीं। (नास्तिक) जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता और जीवों के कर्मों के फलों का दाता मानोगे तो ईश्वर प्रपंची होकर दुःखी हो जायगा। (आस्तिक) भला अनेकविध कर्मों का कर्त्ता और प्राणियों के फलों का दाता धार्मिक न्यायधीश विद्वान् कर्मों में नहीं फंसता न प्रपंची होता है तो परमेश्वर अनन्त सामर्थ्यवान् प्रपंची और दुःखी क्योंकर होगा? हाँ तुम अपने तीर्थङ्करों के समान परमेश्वर को भी अपने अज्ञान से समझते हो तो तुम्हारी अविद्या की लीला है। जो अविद्यादि दोषों से छूटना चाहो तो वेदादि सत्य शास्त्रों का आश्रय लो क्यों भ्रम में पड़े पड़े ठोकर खाते हो।

बारहवाँ समुल्लास समाप्त हुआ।

तेरहवां समुल्लास

इस समुल्लास में ईसाई मत का वर्णन है।

हज़रत ईसा के मानने वाले ईसाई कहाते हैं इनके मुख्य दल दो हैं। एक रोमन कैथोलिक और दूसरे प्रोटेस्टैंट। रोमन कैथोलिक हिन्दुओं के समान मूर्त्तिपूजक हैं। ये हजरत मसीह और मरियम की मूर्त्ति को हिन्दुओं के समान भोग लगाते और आरती भी करते हैं। दूसरा दल जो प्रोटस्टैंट है वह मूर्त्तिपूजा का निषेध करता है। कुछ काल पहिले प्रायः सब ही ईसाई रोमन कैथोलिक के समान मूर्त्ति पूजक थे, इस के अति-

रिक्त और भी पोपजी के अनेक अन्य विश्वास हिन्दुओं के समान ही इनमें विद्यमान थे, परन्तु एक जर्मनी के लूथर नामी विद्वान् ने बहुतों को पोपलीला से बचाकर सामयिक (मौजूदा) प्रोटेस्टैंट दल नियत किया। इनकी ईश्वरीय पुस्तक के मुख्य भाग तीन हैं एक तौरेत, दूसरा ज़बूर और तीसरा इञ्जील ये तीनों भाग मिलकर बाईबिल कहलाते हैं। तौरेत में सृष्टि की उत्पत्ति, आदम की उत्पत्ति, नूह का जल विप्लव (तूफान) लूत की कथा, सारी पृथिवी पर एक भाषा का होना इब्राहीम और उसकी स्त्री सारा का वर्णन, मिश्र देश से दासी हाजरा का पाना, मूसा का वर्णन, इसराईलियों को मिश्र देश से मूसा को छुड़ाकर लाना और यरूसलम के नष्ट होने की कथा है।

ज़बूर में * इस्राईलियों पर मरी भेजने का वर्णन शैतान और ईश्वर का संवाद और अनेक प्रकार के किस्से कहानियों की भरमार है। इञ्जील में मसीह की उत्पत्ति और उस के उपदेशों का वर्णन है। अन्य राजाओं की भी बहुतसी कथायें हैं।

ईसाई लोगों का विश्वास

इन लोगों का विश्वास है कि निराकार परमेश्वर मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं जब तक साकार न हो, इसलिए उसने ३ रूप धारण किये। एक को पिता दूसरे को पुत्र और तीसरे को पवित्रात्मा कहते हैं। पिता वह ईश्वर है। जिसने मूसा आदि को दर्शन दिये। पुत्र हज़रत ईसा हैं जो संसार का पाप छुड़ाने आये, और पवित्रात्मा जिबराईल हैं जो खुदा की आत्मा

* ये वही इसराईलिये हैं जिनको छुड़ाने मूसाद्वारा मिश्र से छुड़वाया था। जिनके लिये सहस्रों वध किये, आज उन्हीं पर मरी भेज रहा है।

को मरियम तक ले गया। मरियम क्वांरी थी जब उससे मसीह उत्पन्न हुए? पिता पुत्र और पवित्रात्मा ये तीनों एक भी हैं और पृथक्-पृथक् भी हैं। मसीह के वाक्य खुदा के वाक्य के समान स्वतः प्रमाण हैं, मार्क, लूक और यूहन्ना आदि के वाक्य भी स्वतः प्रमाण समझे जाते हैं। मसीह, मत्ती, मार्क, लूक और मूहन्ना आदि जो कुछ कहते हैं, वह सब खुदा ही कहता है। अर्थात् इस सारी बाइबिल को ये "धर्मपुस्तक" कहते हैं। इनका मत है कि मनुष्य मसीह पर विश्वास लाने से पापों से छूट जाता है, मसीह संसार का पाप दूर करने को सूली पर चढ़ा था। यह लोग भी मुसलमानों के समान छः सहस्र वर्षों से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। जीव और प्रकृति को भी मुसलमानों के समान ही मानते हैं। इनके स्वर्ग और नरक भी मुसलमानों के समान ही हैं इनकी और मुसलमानों के मत की बातें प्रायः मिलती जुलती सी ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि ये लोग मसीह को अपना नबी और बाइबिल को धर्म पुस्तक मानते हैं और मुसलमान लोग मुहम्मद साहब को अपना नबी और कुरान को इसलाम (ईश्वरीयज्ञान) मानते हैं।

यह लोग मसीह को कुमारी से हुआ मानते हैं। मुसलमानों का भी यही विश्वास है पर इतना भेद है कि यह उसको ईश्वर पुत्र बताते हैं मुसलमान कहते हैं कि खुदा के स्त्री बच्चे, मां और बाप नहीं है—वह असङ्ग (ला शरीक) है। यही वैदिक मत भी है।

बालको! यह बात भले प्रकार याद रक्खो कि यह सारी बातें वेदों के न जानने वालों की चलाई हुई हैं। इसलिए इनमें जो बातें वेदानुकूल जानो वे सच्ची हैं। शेष त्याग देने योग्य हैं। जो बात असम्भव है उसको कभी मत मानो। प्रत्येक बात को

खूब विचार कर मानो। संसार में बहकाने वाले बहुत हैं जो पराया धर्म रूपी धन छल बल से हर लेना अपना मुख्य उद्देश्य समझते हैं।

तेरहवां समुल्लास समाप्त हुआ।

चौदहवां समुल्लास

इसमें मुसलमानी मत का वर्णन है

मुहम्मद साहब को अपना रसूल और कुरान को ईश्वरीय किताब मानने वाले मुसलमान कहाते हैं। ये और ईसाई बहुतसी बातों में एक हैं। मुहम्मद साहब का जन्म सन् ५६९ ई० के अप्रैल मास में मक्के में हुआ था। इनके बाप का नाम 'अब्दुल्ला' माता का नाम 'आमिना' था, इनके पिता अब्दुल्ला मक्के के मन्दिर 'काबे' के पुजारी थे। उस समय अरब के लोग हिन्दुओं के समान मूर्ति पूजक थे इनको (मुहम्मद साहब को) किसी प्रकार मूर्ति पूजा से घृणा हो गई। यह कुछ काल तक मौखिक (जुबानी) ही मूर्ति पूजा का खण्डन करते रहे परन्तु जब इससे काम नहीं चला और कुछ इनके साथी भी हो गये तो ३० वर्ष की आयु में इन्होंने यह कहना आरम्भ किया कि मेरे पास खुदा की ओर से जिबराईल के द्वारा आयतें (ईश्वर-वचन) आती हैं। इन्हीं आयतों के संग्रह को (कुरान कहते हैं) यह कुरान अरबी भाषा में है। इसमें ३० पारे अध्याय ४ सूरत ११४ और आयत ६६६६ हैं। ये लोग सात ७ आसमान मानते हैं। सब से ऊपर खुदा एक तख्त (सिंहासन) पर जिसको चार फरिश्ते (ईश्वर के दूत) उठाये हुए हैं, बैठा मानते हैं, शैतान को जो फरिश्तों का गुरु था, ईश्वर और उसके भक्तों का शत्रु मानते हैं। अरब देश में काबे की मस्जिद की ओर को मुख करके

नमाज़ (ईश्वर वन्दना) पढ़ना धर्म समझते हैं। हज, रोज़ा नमाज़ और ज़कात ये चार बातें सब मुसलमानों को करनी योग्य हैं। (हज) मक्के की यात्रा करना, (रोज़ा) रमज़ान मास में व्रत रखना, (नमाज़) पांच समय ईश्वर की वन्दना करना, ज़कात–अपनी कमाई में से कुछ दान करना।

इनका विश्वास है कि क़यामत (प्रलय) के दिन ईश्वर ८७ फरिश्तों के कन्धों पर चढ़कर आवेगा और जितने संसार के मनुष्य हैं उन सब का न्याय करेगा। उसी दिन कब्रों में से मृतक देह उठेंगे। इनका स्वर्ग भी विचित्र है वहां पर दूध, शहद और मदिरा की नहरें बहती होंगी, सुवर्ण के मकान होंगे जिनमें नाना भांति के रत्न जड़े होंगे और भी नाना भाँति के प्रलोभन (लालच) मुहम्मद साहब ने मुसलमानों को दिये हैं।

बालको! मुहम्मद साहब भी वेदों के प्रकाश से बहुत दूर थे, तभी तो उन्होंने वेद विरुद्ध बातें * कुरान में लिख डालीं वास्तव में कुरान को मुहम्मद साहब ने ही जिबराईल अपने मित्र की सहायता से तैयार किया। दोनों व्यक्ति वेदों का ज्ञान न रखने के कारण भ्रम में पड़ गये और कैसी-कैसी बुद्धि विरुद्ध बातें लिखलीं। इनमें जो २ सत्य बातें हैं वे वेदों की हैं और माननीय हैं और जो-जो असत्य हैं वेद विरुद्ध होने से त्याज्य हैं।

चौदहवाँ समुल्लास समाप्त हुआ।

॥ इति ॥

---

* विशेष जानने की इच्छा हो तो हमारे यहां से कुरान की छानबीन चार आने में मंगा कर पढ़िये।

बालकों के कण्ठ करने योग्य प्रमाण

प्रश्न—वेदों में परमात्मा का अपना नाम ओ३म् कहां लिखा है ?
उत्तर—देखो "ओ३म् खम्ब्रह्म" यजु० अ० ४० मं० १७।

प्रश्न—सृष्टि के आदि में चारों ऋषि अग्नि, वायु आदित्य और अङ्गिरा का गुरु कौन था ?
उत्तर—"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"। योग सूत्र समाधिपाद। सूत्र २६।

प्रश्न—ज्ञानवान् कौन होता है ?
उत्तर—मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद" शतपथ ब्राह्मण।

प्रश्न—प्रेत किसको कहते हैं ?
उत्तर—"गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्। प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति"। मनु अ० ५ श्लोक ६५॥

प्रश्न—मनु महाराज की चार आज्ञायें कौनसी हैं ?
उत्तर—"दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतांवदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्"॥
मनु अ० ५। श्लोक ४६।

प्रश्न—बिना विद्या के बालक कैसे प्रतीत होते हैं ?
उत्तर—"माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा"॥
चाणक्यनीति।

प्रश्न—शरीर, मन, आत्मा और बुद्धि ये चारों किससे शुद्ध होते हैं ?
उत्तर—"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।"

प्रश्न--सन्ध्या किस स्थान पर बैठ कर करें ?

उत्तर--अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥
मनु, अ० २ श्लोक १०४ ॥

प्रश्न--पांच यम कौन हैं ?

उत्तर--तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ।
यो० साधनपादे सूत्र ३० ॥

प्रश्न--पांच नियम कौन हैं ?

उत्तर--शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।
योग० सा० पा० ३२ ॥

प्रश्न--ब्रह्मप्राप्ति के योग्य शरीर कब होता है ?

उत्तर--स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु० अ० २ । २८ ॥

प्रश्न--आयु, विद्या यश और बल किस का बढ़ता है ?

उत्तर--अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्यवर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥
मनु० अ० २ । १२१ ॥

प्रश्न--द्विज किस कर्म से शूद्र हो जाता है ?

उत्तर--योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥मनु० अ० ४ ।२।१६८ ॥

प्रश्न--आर्यों के लिये परम प्रमाण क्या है ?

उत्तर--अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ मनु० अ०२।१३॥

प्रश्न--वस्तुओं की सिद्धि किस प्रकार होती है ?

उत्तर--लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः ।

प्रश्न—वेद किस-किस के लिये हैं ?
उत्तर—यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।
यजु० अ० २६ मं० २

प्रश्न—सर्वोत्तम दान क्या हैं ?
उत्तर—सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । वार्यन्नगोमही-वासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ मनु० अ० ४ । २३३ ॥

प्रश्न—गृहस्थाश्रम में कब जावे ?
उत्तर—वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । अविप्लुत-ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ मनु० अ० ३ । २ ॥

प्रश्न—सन्तानों को कौन से बड़े बूढ़ों के मार्ग पर चलना योग्य है ?
उत्तर—येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः तेन याया-त्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

प्रश्न—इस जनसमुदाय के मुख, बाहू, ऊरू और पग क्या हैं ?
उत्तर—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः, ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत । मनु० अ० ३१ । मं० १३ ॥

प्रश्न—क्या वर्ण भेद हो सकता है ।
उत्तर—हां हो सकता है जैसे--शूद्रो ब्राह्मणतामेतिब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् । क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥
मनु० अ० १० । ५६ ।

प्रश्न—क्या वर्ण भी बदल सकते हैं ?
उत्तर—हां, जैसे- धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं-जघन्यं वर्णमापद्य
जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥ आपस्तम्ब सूत्र ॥

प्रश्न—ब्राह्मण के कौन से कर्म हैं ?

उत्तर—अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

मनु० अ० १ । ८८

प्रश्न—क्षत्रिय के कौन २ से कर्म हैं ?

प्रश्न—प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः" ॥

मनु० अ० १ । ८९

प्रश्न - वैश्य के कौन कौन कर्म हैं ?

उत्तर—'पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक् पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिरमेव च ॥

मनु० १ । ९०

प्रश्न—शूद्र के कौन कौन से कर्म हैं ?

उत्तर—एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु० अ० १।९१

प्रश्न—विवाह के प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—८ प्रकार के यथा—

'ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥

मनु० अ० २ । २१

प्रश्न—वचन कैसे बोले ?

उत्तर—सत्यं ब्रूयात् प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् । प्रियञ्च
नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ मनु० अ० ४ । १३८

प्रश्न—पञ्च महायज्ञ कौन से हैं ?
उत्तर—ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेद्गृही ॥
मनु० अ० ४ । २१ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
मनु० ३ । ७०

स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधिः ।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा" ॥
मनु० ३ । ८१ ॥

प्रश्न—अग्निहोत्र करने से क्या लाभ होता है ?
उत्तर—सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः ।
सौमनसस्य दाता ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो
अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता ॥
अथर्व० कां १९ अनु० ७ । मं० ३ । ४ ॥

प्रश्न—संध्या न करने वाले की क्या गति होनी चाहिये ?
उत्तर—न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ।
मनु० २ । १०३ ॥

प्रश्न—सोकर किस समय उठे, फिर बैठकर क्या २ करे ?
उत्तर—ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौं चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥
मनु० ४ । ९२ ॥

प्रश्न—संन्यासी कब बने ?
उत्तर—ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी

भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। श० प० कां०
अथवा यदहरेव विरजेतदहरेव प्रव्रजेत् वनाद्वा, गृहाद्
ब्रह्मचर्याद्वा ॥ ब्राह्मणग्रन्थे ॥

प्रश्न—संन्यासी का क्या धर्म है ?

उत्तर—पुत्रैषणायाश्च, वित्तैषणायाश्च, लोकैषणायाश्च, व्युत्
याथ भिक्षाचर्यं चरन्ति। श० कां० १४ ॥
प्र० ४। ब्रा० २। कं० १

प्रश्न—विद्वान् की क्या महिमा है ?

उत्तर—विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥
चाणक्यनीति।

प्रश्न—ईश्वर किस को कहते हैं ?

उत्तर—क्लेशकर्मविपाकाशैरपरामृष्टपुरुषविशेष ईश्वरः।
दर्शन।

प्रश्न—ईश्वर के हाथ, पांव और मुख आदि हैं वा नहीं।

उत्तर—नहीं, क्योंकि—अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यच
स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च।
तस्याऽस्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
श्वेता० अ० ३। मं० १६ ॥

प्रश्न—प्रकृति नित्य है वा अनित्य ?

उत्तर—नित्य, क्योंकि—अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः
प्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥ श्वेता० अ० ६ म० ५

प्रश्न—शरीर सहित आत्मा के क्या गुण हैं ?

उत्तर—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख, दुःख, ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति
न्या० द० अ० १। १० ॥

प्रश्न—वह देव कौनसा है जिस से चारों वेद हुए ?

उत्तर—यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् । स्कम्भन्तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अथर्व का० १० प्रप० २३ । अनु० ४ । मं २० ॥

प्रश्न—चारों वेद किन ऋषियों पर प्रकाशित हुए ?

उत्तर—अग्नेर्ऋग्वेदो, वायोयजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ।

शत० । ११ । ४२३ ॥

प्रश्न—पूर्व के ऋषियों का गुरु कौन है ?

उत्तर—सपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

योग० समाधिपाद । सू० २६ ॥

प्रश्न—वेद मन्त्रों के ऋषि कौन हैं ?

उत्तर—ऋषयो मन्त्रदृष्टारः । निरुक्त । १ । २० ॥

प्रश्न—प्रलय काल में इस जगत् की क्या अवस्था थी ?

उत्तर—तमआसीत् तमसा गूढमग्रे प्रकेतं यदासीत्तपसस्त महिना जायतैकम् ।

ऋग्वे० मं० १० सू० १२६ मं ७ । ३ ॥

प्रश्न—तीन वस्तु कौन २ सी अनादि हैं ।

उत्तर—द्वा सुपुर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० वे० मं० १ । सू० १६४ म० २० ॥

प्रश्न—मूल का मूल होता है या नहीं ।

उत्तर—नहीं, क्योंकि—मूलेमूलाऽभावादमूलं मूलम् ।

सांख्य० द० अ० १ मू ६७ ॥

प्रश्न—सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम क्या है ?

उत्तर—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।
आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः ॥
अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ।
ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः ॥
स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तैत्तिरीयोपनि०
ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक १ ।

प्रश्न—अभाव से और भाव से अभाव होता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि—नासतो विद्यतेभावो नाभावो विद्यतेसतः ।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥
भगवद्गीता अ० २ । १६ ।

प्रश्न—आर्य्यावर्त्त की हद कहां तक है ?

उत्तर—आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्तं प्रचक्षते ॥
मनु० अ० । २२ । २७ ॥

प्रश्न—वेदों में कितने प्रकार के मनुष्य बताये हैं ।

उत्तर दो प्रकार के । यथा—उतशूद्रे उतार्ये ॥
अथर्व० कां० १९ व० ६२ ॥

प्रश्न—आर्य किस को कहते हैं ?

उत्तर—विजानीह्यार्यान्येच दस्यवो बर्हिष्मतेरन्धय शासदव्रतान् ॥
ऋ० वे० मं० १ । सू० ५१ मं० ८ ॥

प्रश्न—दस्यु किस को कहते हैं ?

उत्तर—म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृता; ।
मनु० १० । ४५ ।)

प्रश्न—पृथिवी किस पर ठहरी है ?
उत्तर—सूर्याकर्षण से यथा—उक्षादाधार पृथिवीमुतद्याम् ।
आकृष्णेन रजसावर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्मयेन सविता रथेना देवोयाति भुवनानि पश्यन् ।
यजु० अ० ३३ । मं० ४३ ॥

प्रश्न—चन्द्रमा में किसका प्रकाश है ?
उत्तर—सूर्य का प्रकाश, यथा-दिवि सोमो अधिश्रितः ।
अथर्व० कां० १४ अनु० १ मं० १ ॥

प्रश्न—तारागण में मनुष्य सृष्टि है वा नहीं ?
उत्तर—है, यथा—एतेषु हीदँ सर्वं वसु हितमेते हीदँ सर्वं वास-यन्ते तस्माद्वसवं इति ।
शतपथ कां० १४ प्र० ६ ब्रा० ७० कं० ४ ॥

प्रश्न—अविद्या किसको कहते हैं ?
उत्तर—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिर-विद्या ॥ योगद० सा० पा० सू० ५ ॥

प्रश्न—क्या इस संसार का कभी अभाव हो जावेगा ?
उत्तर—नहीं । यथा-इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं ?
उत्तर—तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ।

प्रश्न—मुक्ति में जीव कब तक रहता है ?
उत्तर—ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
मुण्डक ३ खं० २ मं ६ ॥

प्रश्न—पांच क्लेश कौन कौन से हैं ?
उत्तर—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ।
योग० पा० २ । ३ ॥

प्रश्न—पूजने योग्य देवता कौन कौन हैं ?

उत्तर मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथि देवो भव। तैत्तिरीय० प्र० ७ अनु० ११॥

प्रश्न—आर्यों के गृह में भोजन कौन बनावे ?

उत्तर—आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः।
आपस्तम्बधर्म सूत्र, प्रपाठक १ पटल ० खं० २ सूत्र ४॥

प्रश्न—मदकारी पदार्थ क्या २ हैं ?

उत्तर—बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।
शाङ्गधर अ० ४ श्लो० २१॥

प्रश्न—किसी का झूंठा खावे वा नहीं ?

उत्तर—नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरम्।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।
मनु० अ० श्लो० [illegible]॥

प्रश्न—सर्व देशों के मनुष्य अपना अपना धर्म कहां और किस से सीखें ?

उत्तर—एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः। मनु० २। २०॥

प्रश्न—अश्वमेध और गोमेध शब्दों के क्या अर्थ हैं ?

उत्तर—राष्ट्रं वा अश्वमेधः श० १३। १६। ३॥
अन्नं हि गौः। शत० ४। ३। १५॥
अग्निर्वा अश्वः। आज्यं मेधः। शतपथे॥

प्रश्न—राजा भोज के समय के लकड़ी के घोड़े और पंखे कैसे थे ?

उत्तर—घट्यैकया क्रोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति। चारुगत्या। वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम्॥ भोज प्रबन्ध॥

प्रश्न—तप किस को कहते हैं ?

उत्तर—ऋतं तपः, सत्यं तपः श्रुतं तपः, शांतं तपो ॥ दमस्तपः ॥
तैत्तिरीय प्र० १० अ० ८ ॥

प्रश्न—परमात्मा को छोड़ कर अन्य की उपासना करने वाले की क्या गति होती है ?

उत्तर—अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूयइव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः ।
यजु० अ० ४० । मं० ९ ॥

प्रश्न—परमेश्वर की प्रतिमा (मूर्त्ति) है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
यजु० अ० ३२ ॥

प्रश्न—पुराण कितने और कौन से हैं ?

उत्तर—१८ हैं और उनके नाम ये हैं । ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कंद, ब्रह्मवैवर्त, भविष्य, वायु, वामन, मार्कण्डेय, वाराह, मत्स्य और कूर्म ।

प्रश्न—कश्यप किसको कहते हैं ?

उत्तर—कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति ।
निरुक्त अ० २ खं० २ ॥

प्रश्न—चन्द्रग्रहण कैसे पड़ता है ?

उत्तर—छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः । ग्रहलाघव ।

प्रश्न—जीव को दुःख व सुख कब प्राप्त होता है ?

उत्तर—पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।
सांख्य० अ० सू० २७ ॥

प्रश्न—धीर पुरुषों का क्या लक्षण है ?

उत्तर—निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥ भर्तृहरिः ।

॥ इति ॥

प्रश्नोत्तरी

राम—भाई भरत ! हमने सुना है कि तुमने इस वर्ष सत्यार्थप्रकाश की परीक्षा दी है ?

भरत—हां भाई साहब ! दी तो है. और परमात्मा की कृपा और आपके आशीर्वाद से सब से प्रथम संख्या में रह रहा हूं।

राम—कहो भाई ! आपको याद तो अब तक खूब होगा ?

भरत—हां भाई, परिश्रम किया है तो याद क्यों नहीं होगा ।

राम—अच्छा, प्रथम यह बतलाओ कि सत्यार्थप्रकाश में कितने समुल्लास हैं और उनमें क्या २ विषय हैं ?

भरत—सत्यार्थप्रकाश में १४ समुल्लास हैं, और निम्नप्रकार विषय हैं ।

१—ईश्वर के १०० नामों की व्याख्या ।
२—बालकों की शिक्षा का वर्णन है ।
३—पढ़ने पढ़ाने की विधि है ।
४—इसमें समावर्त्तन, विवाह और गृहस्थाश्रम का वर्णन है ?
५—इसमें वानप्रस्थ और संन्यास का वर्णन है ।
६—इसमें राजप्रकरण का वर्णन है ।
७—इसमें वेद और ईश्वर का वर्णन है ।
८—इसमें सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन है ।

९—इसमें विद्या अविद्या बन्ध और मोक्ष का वर्णन है ।
१०—इसमें आचार, अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य का वर्णन है ।
११—इसमें आर्यावर्त के मतों का खण्डन है ।
१२—इसमें नास्तिक के मतों का खण्डन है ।
१३—इसमें ईसाई मत की परीक्षा है ।
१४—इसमें मुसलमानों के मत की परीक्षा है ।

अन्त में श्री स्वामीजी महाराज ने स्वमन्तव्यामन्तव्य लिखे हैं, जिनकी संख्या ५२ है, इसमें यह दर्शाया है कि मैं वेदानुकूल इन ५२ बातों को किस प्रकार मानता हूं ।

राम—तुम्हारा प्रथम उत्तर तो बहुत ही ठीक निकला, अच्छा मैं आगे कुछ और प्रश्न करता हूं । अच्छा यह तो बतलाओ कि स्वामी जी महाराज ने तो दस ही उपनिषद् माने हैं, फिर उन्होंने प्रथम समुल्लास में कैवल्योपनिषद् का प्रमाण क्यों दिया ? यह तो दस उपनिषद् में नहीं है ।

भरत—स्वामीजी ने जिनको समझाने का यत्न किया है वे इन सब उपनिषदों के मानने वाले हैं । अपने मत को दूसरों की मानी हुई पुस्तकों से सिद्ध करना युक्तियुक्त है । जहां स्वामीजी ने इस विषय में वैदिक प्रमाण दिये वहां अन्याय पुस्तकों के भी दिए, जिससे यह सिद्ध हो कि हमारे वैदिक मत की पुष्टि तुम्हारे आधुनिक ग्रन्थ भी करते हैं ।

राम—बहुत ठीक । अच्छा, यह तो बताओ कि जब 'राम' "कृष्ण" और "हरि" आदि शब्द व्याकरण से सिद्ध हैं तो स्वामीजी ने इनको मङ्गलाचरण में क्यों नहीं रक्खा ?

भरत—व्याकरण से सिद्ध हो जाना और बात है, और वेदानुकूल होना और बात है । व्याकरण संस्कृत का इतना परिपूर्ण

है कि इससे संसार के सभी शब्द सिद्ध हो जाते हैं पर इतने से वे सब वेदानुकूल वा आर्ष नहीं हो सकते। इसी प्रकार राम, कृष्ण आदि नाम वेदों में कहीं भी ब्रह्म के नहीं आते।

राम–आपने तो बहुत समझकर सत्यार्थप्रकाश पढ़ा है। अच्छा यह बतलाओ कि माता गर्भाधान से बच्चों को शिक्षा कैसे दे सकती है ?

भरत–भाइजी! प्रत्येक अवस्था की शिक्षा का प्रकार पृथक् २ है। वर्ष दो वर्ष के बालकों की शिक्षा का ढङ्ग ८–१० वर्ष के बालकों की शिक्षा से भिन्न है। युवा पुरुषों की शिक्षा की प्रणाली में और भी भेद है। गर्भावस्था में शुद्ध विचार और शुद्ध भोजन ही शिक्षा है। उसी से बालक अच्छे विचार वाला और हृष्टपुष्ट हो सकता है।

राम–अत्युत्तम! क्यों भाई! स्वामीजी ने तो भूतप्रेत का खण्डन किया है परन्तु सुश्रुत में तो भूत प्रेत की चर्चा पाई जाती है।

भरत–ऐसे वाक्य प्रक्षिप्त हैं, इनको नहीं मानना चाहिये सत्यता केवल इतनी है कि जिनके चित्त में किसी प्रकार की शङ्का उत्पन्न हो जावे उसका वह "वहम" वैसे ही विचारों से दूर कर दे।

राम–और वेदों में जो—

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरो निपुरो भरन्त्यग्निष्टांल्लोकान्प्रणुदात्यस्मात् ॥
य० अ० २ मं० ३० ॥

रूप बदले हुए प्रेतों की चर्चा है ?

भरत-इस मन्त्र में भूतप्रेत नहीं बतलाये हैं। प्रत्युत सत्यार्थ यह है (ये) जो (असुराः) (रूपाणि) रूपों को (प्रतिमुञ्चमानाः) बदले (सन्तः) हुए (स्वधया) अन्न के साथ (चरन्ति) वायु में घूमते फिरते हैं और (ये) जो (परापुरः) बुरे शरीरों की ओर (निपुरः) निकृष्ट सूक्ष्म और दुर्गन्धमय शरीरों को, (भरन्ति) धारण करते हैं (तान्) उन सब को (अग्निः) अग्नि (प्रणुदाति) दूर कर देता है। अर्थात् अन्धकार में रहने वाले रोग के सूक्ष्म कीड़े (जर्मस) का नाश करने वाला अग्नि है। यह कैसा अच्छा आशय है।

राम-क्योंजी ! स्वामीजी तो फलित ज्योतिष् मानते ही नहीं, फिर "वाताय कपिल विद्युदातपायाति लोहिनी। कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्" इसमें बतलाया है कि कैसी बिजली चमकने से संसार में किस प्रकार दुःख फैलता है ?

भरत-यह महाभाष्य का वचन है और उत्पातेन ज्ञायमाने सूत्र पर है ! आशय यह है कि पीली बिजली चमके तो वायु चले, लोहित से धूप अधिक पड़े, कृष्ण से सर्वनाश और श्वेत से दुर्भिक्ष पड़े। भला इसमें फलित ज्योतिष का क्या सम्बन्ध ? इसमें तो केवल यह बतलाया है कि बिजली पर वायु मण्डल का प्रभाव संसार में क्या प्राकृतिक परिवर्तन उत्पन्न करता है।

राम-स्वामीजी ने यज्ञ से जल वायु की शुद्धि मानी है इसमें कोई वेदों का भी प्रमाण है ?

भरत-है। देखिये वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोसि० आदि। "मातरिश्वा" शब्द से इसमें बताया है कि यज्ञ वायु शोधक है।

राम–स्वामीजी महाराज ने वेदों में इतिहास नहीं माना है, परन्तु अथर्व० का० २०। १२७। १० में राजा परीक्षित् का नाम है?

भरत–प्रिय भ्राता! यहां पर परीक्षित् के अर्थ किसी राजा के नहीं हैं किन्तु परीक्षित् शब्द राजा का विशेषण है। "परीक्षित्" शब्द के अर्थ ये हैं (परि = सर्वतः)+(ईक्षिता=द्रष्टा) अर्थात् सब के द्रष्टा-सब ओर दृष्टि रखने वाला। मंत्र यह है:– जनः सभद्रमवति राष्ट्रे राज्ञः परीक्षितः। अर्थः सब ओर देखने वाले राजा के राज्य में प्रजा सुख से बढ़ती है।

राम–आपने चतुर्थ समुल्लास में पढ़ा होगा कि "परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः"। शतपथे। परन्तु यह पाठ शतपथ में नहीं है?

भरत–भाईजी! यह पाठ शतपथ में "परोक्ष कामाहि देवाः" १४। १। १३ पर है और ऊपर वाला पाठ गोपथ ११। १ और कण्डिका ७ में ३ बार आया है। आशय दोनों का एक ही है; केवल लिखने लिखाने में किसी प्रकार गोपथ का शतपथ हो गया है।

राम–पांचवें समुल्लास में स्वामीजी ने मनुस्मृति के नाम से एक श्लोक लिखा है जो यह है "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्"॥ परन्तु उसका सारी मनुस्मृति में कहीं भी पता नहीं है।

भरत–स्वामीजी के लिखे में और आज कल की पुस्तकों के लिखे में केवल पाठभेद है, अर्थ भेद कुछ भी नहीं अब दोनों श्लोकों को बराबर २ रख कर देखिये। अर्थ में कुछ भी अन्तर नहीं है।

दक्षिण की हस्तलिखित पुस्तकों में जिसमें से स्वामीजी ने उद्घृत किया है।

विविधानि च रत्नानि, विविक्तेषूपपादयेत् ।
वेदवित्सु तु विप्रेभ्यः प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते । मनु० ११ । ३ ॥

आजकल की पुस्तकों में इस प्रकार पाठभेद है। धनानि तु यथाशक्ति, विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ११ । ६ ॥

दोनों श्लोकों में विक्कि अर्थात् संन्यासियों को रत्न=धन देना लिखा है।

राम-भाई! आप "विविक्त" शब्द के अर्थ संन्यासी कैसे कहते हैं?

भरत-(विविक्त) शब्द (विचिर्) पृथक्भावे धातु से बना है, जब इसके अर्थ संन्यासी शब्द से मिलते हुए हैं तब इसके गृहस्थ में फंसे हुए के अर्थ कैसे हो सकते हैं? विचिर्=पृथक्भावे से विविक्त 'न्यासत्यागे' से संन्यासी शब्द बनते हैं। रहा पाठभेद। इसके लिये श्री विद्वद्वर पं० तुलसी रामजी स्वामी कृत मनु की टीका देखिये तब विदित हो जावेगा, कि मनु में कितने पाठ भेद हो चुके है?

राम-भला यह तो बताइये कि स्वामीजी ने (ततो मनुष्या अजायन्त) यजुर्वेद के पते से लिखा है। भला यह वाक्य चारों वेदों में कहां आया है?

भरत-प्यारे भाई! यह वाक्य शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४ प्रपाठक ३ ब्राह्मण ४ कण्डिका ३ के अन्त में है। शतपथ यजुर्वेद का ब्राह्मण है इसलिये ब्राह्मणों को भी संहिता के समान मानने वाले तो इससे इन्कार कर ही नहीं सकते कि वह यजु-

वेद से सिद्ध नहीं है। लिखने लिखाने में पाठभेद हो जाना सम्भव है। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी समझ लेना चाहिये।

राम—अच्छा यह तो बताइये कि स्वामीजी ने यह किस आधार पर लिख दिया कि आदि सृष्टि तिब्बत में उत्पन्न हुई।

भरत—आप तो अंग्रेजी पढ़े लिखे हैं भाई जी क्या आपको विदित नहीं कि पृथिवी सृष्टि की आदि में उत्तप्त थी। और ठण्डो होने पर वह इस योग्य हुई कि वनस्पति को उगा सके। यह भी आपको ज्ञात होगा कि पृथिवी गोल है, तो ऐसी अवस्था में सब से ऊपर का भाग सब से पूर्व ठंडा होना चाहिये। बस जो भाग सब से पूर्व ठंडा हो वहीं पर सब से पूर्व प्रजा की उत्पत्ति भी होनी चाहिये। इस रीति के अनुसार सब से ऊँचा भाग जो तिब्बत है, वहीं आदि सृष्टि उत्पन्न हुई।

राम—महाशय ! यह बताइये कि स्वामी लिखित 'रथेन वायुवेगेन "जगाम गोकुलं प्रति" भागवत में कहां लिखा है ?

भरत—सुनो भाई ! ये दोनों पाद किसी एक श्लोक के नहीं हैं। किन्तु पृथक् २ श्लोकों के हैं।

आज कल की पुस्तकों में यह पाठ है।

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं, मधुपुर्यां महामतिः।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलं" ॥

भा० १० । ३८ । १ ॥

दक्षिणी हस्तलिखित पुस्तकों में—

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं, मधुपुर्यां महामतिः।
उषित्वा रथमास्थाय जगाम गोकुलं प्रति"

भा० १० । ३८ । १ ॥

अन्तर केवल "प्रययौ नन्दगोकुलम्" और "जगाम गोकुलं प्रति" में है।

प्रययौ और जगाम ये दोनों शब्द एकार्थ वाची हैं।

या=गति प्रापणयोः गम्लृ=गतौ।

दोनों गत्यर्थ हैं। अतः अर्थ भेद कुछ न होने से स्वामीजी का कथन सत्य है।

अब रहा 'रथेन वायुवेगेन' सो देखिए भा० । ३६ ॥ ३६ । ३८ में विद्यमान है ?

राम-पूतना का शरीर छः कोस का भागवत में कहां लिखा है ?

भरत-देखिये।

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्।
चूर्णयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥

राम-हिरण्याक्ष पृथिवी को चटाई के समान लपेट कर सोगया। भला यह भागवत में किस श्लोक का आशय है ?

भरत-भरत दक्षिण की हस्तलिखित पुस्तकों में एक श्लोक इस प्रकार लिखा है।

कटमिवसमाहृत्य हिरण्याक्षो महाबलो।
कृत्वोपधिभुजं राजन् सुष्वाप दानवेश्वरः ॥

राम-प्रह्लाद को लाल खम्भे से बांधते समय चींटियों का रेंगना कहां लिखा है ?

भरत-यह भी दक्षिणी पुस्तकों में इस प्रकार है।

अग्निप्रज्वलिते स्तम्भेजग्मुः श्नेन्याः पिपीलिका।
नप्रदग्धाः बभूवुस्ता हरेदभूतलीलया ॥

॥ इति ॥

हमारी हार्दिक इच्छा

राष्ट्र बलवान् बने, राष्ट्र का हर पुरुष बलवान् बने, राष्ट्र की हर स्त्री बलवान् बने ईश्वर की कृपा हो और हमारी सेवा हो तो यह हर हालत में हो सकता है।

भाई और बहनो! आज सैंतीस साल हो गये जो यह कार्य कर रहा हूं लाखों भाई बहन हमारे इलाज से ठीक होकर अपना जीवन सफल बना चुके हैं और बना रहे हैं।

हमारे सैंतीस साल के अनुभव, बहतरीन इलाज और सफल चिकित्सा की हर जगह हर शहर हर गाँव में तारीफ ही सुनी जाती है। उसका कारण यह है कि हम सदा यही चाहते हैं कि जो हमारे पास बहन भाई आयें, उनका इलाज अपना समझ कर करें। सच्चे सेवा दिल से करके नर हो चाहे नारी हो, हर एक की शारीरिक व्याधि दूर करके उनको स्वस्थ बनायें, बलवान् बनायें जिस से वह हर कार्य में सफलता प्राप्त कर सकें, अपना गृहस्थ जीवन आनन्दमय बना सकें, बलवान् और निरोगी बनायें सन्तान पैदा कर सकें यही हमारी सदा शुभ कामना रही है इसलिए ईश्वर की कृपा और आपके आशीर्वाद ने सदा हमारा साथ दिया है हमें विश्वास है कि आप भी सदा भाई के तौर पर हमें ही सेवा के लिए चुनेंगे और अपना जीवन मधुर सुन्दर और सफल बनायेंगे हमारे इलाज में ४० दिन की दवा २५) रु०, स्पेशल दवाइयाँ एक मास के लिए ५०) रु०, महान् स्पेशल कोर्स २० दिन के लिए १००) रु० मुख्य है। डाक व्यय अलग रहेगा। देखने और लेने के लिए कोई दाम अलग नहीं हैं।

सेवा में आपका भाई

हकीम बीरूमल आर्य-प्रेमी

आर्यन फार्मेसी, आर्यप्रेमी भवन, नलाबाजार, अजमेर

आर्यसमाज के नियम

१ सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२ ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३ वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४ सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६ संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७ सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८ अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९ प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१० सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥

मुद्रकः—भगवानस्वरूप न्यायभूषण, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
प्रकाशकः—वैद्य मोहनलाल आर्यप्रेमी, नला बाजार, अजमेर।

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्यप्रेमी का विशेषाङ्क

महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के

आज़मूदा नुसखे

अर्थात्

अनुभूत प्रयोग



(परिवर्द्धित—संशोधित संस्करण)

इसे पुस्तक रूप में लाने वाले

१. वैद्यराज जगन्नाथ प्रसाद विद्याश्रमी आगरा वाले

२. महर्षि के परम भक्त श्री पं० भगवद्दत्त बी०ए०

सम्पादक वैद्य मोहनलाल आर्यप्रेमी	एक प्रति २५ पैसे वार्षिक शुल्क ३) रु०	वर्ष १५ अङ्क ३ अजमेर अप्रेल १९६७ दयानन्दाब्द १४३

सम्पादक

वैद्य मोहनलाल आर्यप्रेमी

आर्यप्रेमी कार्यालय

आर्यन फार्मेसी, आर्यप्रेमी भवन, नला बाजार, अजमेर

शोक महा शोक



श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, सरलता तथा नम्रता के अवतार पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित जी का आज १६-३-६७ ब्रह्म मुहूर्त्त में ३॥ बजे आकस्मिक निधन हो गया। आपको सात घन्टे फालिज का आक्रमण रहा और उससे ठीक नहीं हो सके, दैव बड़ा प्रबल है, शान्ति के सिवा कोई चारा नहीं। प्रसन्नता की बात यह है आपने प्राणों को बल पूर्वक ओ३म् की ध्वनि निकालते हुए शरीर को त्याग दिया। भगवान् उन्हें सद्गति प्रदान करेंगे ही और उनके शिष्यों, प्रेमियों, भक्तों को इस भीषण आघात को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

उनकी यज्ञ पद्धति अपने ढंग की थी। जो देखता वह मस्त व गद्गद् हो जाता। उनके सम्पर्क में जो भी एक बार आए, उनका जीवन ही बदल गया। उनकी प्रेरणा से कई भाइयों के घरों में दैनिक हवन यज्ञ और गायत्री मन्त्रों की जय होती रहती है। वह कई बार करांची व हैदराबाद (सिन्ध) में भी टोबा टेकसिंह से यज्ञ कराने आया करते थे। उन्होंने आर्यसमाज का प्रचार यज्ञ प्रचार व गायत्री योग और गृहस्थ जीवन को सरल व सुखमय बनाने के लिए ६६ पुस्तकें हिन्दी व उर्दू में छपवाई और कई अभी अप्रकाशित हैं जिनको पढ़कर आज भी आनन्द से मन विभोर हो जाता है।

सम्पादक
मोहनलाल आर्यप्रेमी

तृतीय संस्करण की भूमिका

प्रिय पाठकगण ! आपका आर्यप्रेमी आज आपके हाथों में यह अमूल्य खजाना युग प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के अनुभूत प्रयोग आपको भेंट कर रहा है। आप आजमायें और लाभ हासिल करें और बोलें महर्षि स्वामी दयानन्द की जय।

हम ने प्रयत्न किया कि इस का प्रथम भाग दूसरा एडीशन १९३५ में आगरा में छपा था। जो पूजनीय पं० लेखराम आर्य-मुसाफिर की उर्दू पुस्तक महर्षि के जीवन से लिया गया था। और दूसरा भाग हम ने महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त पं० भगवद्दत्त एम० ए० की पुस्तक 'ऋषि दयानन्द के पत्र व विज्ञापन' से लिया है। हम दोनां के बहुत आभारी हैं। हम ने प्रयत्न किया है कि सभी प्रयोग इस छोटी सी पुस्तक में आजायें, जो हमें प्राप्त हुए हैं, वह हम ने दिए हैं। अगर किसी महानुभाव के पास स्वामी दयानन्द के अनुभूत प्रयोग हो तो हमें भेजें हम उन के आभारी होंगे। हम उस को आर्यप्रेमी में प्रकाशित कर हजारों भाइयों के पास पहुंचाने का प्रयत्न करेंगे।

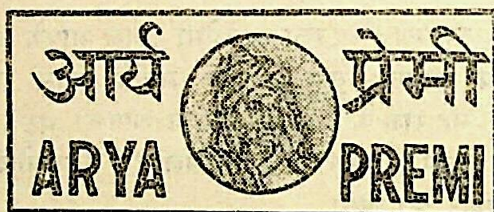
सेवा में,

आपका भाई

हकीम वीरुमल आर्यप्रेमी

वैद्य मोहनलाल आर्यप्रेमी

* ओ३म् *



महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुभूत प्रयोग ।



दिल धड़कने पर योग

पं० हरिनारायणजी वकील कानपुर ने बयान किया कि हमारे छोटे भाई पं० प्यारेलालजी को दिल धड़कने की बीमारी थी उसे स्वामीजी ने सेवती का गुलकन्द खाने को बतलाया था।

टि० मोती कटरा आगरा निवासी ठेलेश्वर मूलचन्दजी वर्मा ने मुझे बताया है कि-स्वामीजी ने बाबू जमुनादासजी विश्वास लीडर को दिल धड़कने की बीमारी के लिये मूंगा १ रत्ती और सोना मक्खी (एक धातु होती है) भस्म १ रत्ती सेवती का गुलकन्द २ तोले में मिला कर खाने के लिये बताया था, इस से

उन को बड़ा लाभ हुआ था। स्वामीजी ने मूंगा-भस्म बताई थी या पिष्टी यह ठीक-ठीक नहीं मालूम। मूंगा दोनों ही प्रकार से व्यवहार में आता है। मेरे विचार में इस रोग पर मूंगा भस्म के बजाय मूंगा पिष्टी अधिक उपयोगी होगा। स्वामीजी ने विश्वासजी को भस्म या पिष्टी करने की कोई विधि नहीं बताई थी बल्कि किसी वैद्य से ले लेने के लिये कह दिया था। यहां हम भस्मों की सरल विधि लिखे देते हैं।

प्रवाल-मूंगा

शोधन विधि—

एक छटांक मूंगा को एक साफ कपड़े में पोटली बांध लें एक ऐसी हांडी में जिस में दस सेर दूध आ जाता हो, उस में दो सेर दूध भर दें। अब पोटली को एक रस्सी-डोरे में बांध कर किसी लकड़ी में बांध दें और पोटली हांडी के बीच में लटका दें। परन्तु यह ध्यान रहे कि पोटली हांडी की पैंदी से न लगने पाए दो तीन अंगुल ऊंची रहे। अब इसे चूल्हे पर चढ़ा दें और उस के नीचे धीमी-धीमी आंच दें। तीन घण्टे बाद उतार पोटली रख कर प्रवाल को धो डालें। बस अब प्रवाल शुद्ध है।

भस्म विधि—

शुद्ध प्रवाल को घीगुआर के रस में घोट कर सुखावें और शराव संपुट में रख कर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार ३।४ पुट में उत्तम, सफेद भस्म हो जाती है। मात्रा आधी रत्ती से २ रत्ती तक। प्रातः साय अथवा आवश्यकतानुसार लें।

गुण—

नेत्ररोग, धातु विकार, कफ के रोग, ज्वरांश, खांसी, श्वास, क्षय रोग, पित्त के विकार और पाचनदोष में हित कर हैं।

शराव संपुट—

मिट्टी के एक से सकोरे (सरैया) लेकर उन के किनारे धीरे-धीरे घिस कर आपस में मिला कर देख लें। जब उन की सन्धि आपस में मिल जांय, तब एक सकोरे में दवा की टिकियां रख दें और दूसरा सकोरा उस पर आधा ढक कर दोनों की सन्धि गीली मिट्टी से बन्द कर कपर मिट्टी कर दें।

कपर मिट्टी—कपरौटी—

मुलतानी मिट्टी को महीन पीस कर पानी में भिगो दें। भीग जाने पर कपड़े पर लहेस कर शराव संपुट पर लपेट-चिपका दें। जब एक तह सूख जाय तब इसी तरह दूसरी तह चढ़ा दें। एक साथ ३-४ तह से ज्यादा कपर मिट्टी न करें, सूखने पर करने से कोई हानि नहीं।

गजपुट—

एक गज गहरे, चौड़े, गोल गढ़े को आधा उपलों से भरें फिर उस पर संपुट रख कर ऊपर से और उपले भर कर अग्नि दे दें। इसे गजपुट कहते हैं।

प्रवाल पिष्टी—

शुद्ध प्रवाल को गुलाब के असली अर्क, केवड़े के अर्क और वेदमुश्क के अर्क में एक एक महीने लगातार घुटवावें सूखने पर काम में लावें। मात्रा-आधी रत्ती से दो रत्ती तक।

गुण—

दिल दिमाग को ताकत देती है! पुराने ज्वर निर्बलता और वीर्य विकारों में हितकर है।

स्वर्ण माक्षिक सोना मक्खी

शोधन विधि—

सोना मक्खी के महीन टुकड़े कर मूंगे की तरह चौलाई के रस में ३ घण्टे औटावें।

भस्म विधि—

शुद्ध सोनामक्खी को खरल में पीस, नींबू के रस में घोट कर टिकिया बनायें और सुखा कर शराब संपुट में रख कर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार ११ पुट देने से ठीक भस्म होगी।

इस का रंग लाल कुछ कालापन लिये हुए होता है मलमल-सी मुलायम मालूम होती है। मात्रा—आधी रत्ती से दो रत्ती तक।

गुण—

अनिद्रा, मस्तिष्क के विकार, सिर और नेत्र के रोग, हृदय की कमजोरी में लाभदायक है।

बुद्धि वर्द्धक प्रयोग

पं० विहारीलालजी कानपुर निवासी ने वर्णन किया कि स्वामीजी बुद्धि बढ़ाने के लिये शीतकाल में मालकांगनी का सेवन उपयोगी बताया करते थे वह इस विधि से कि—माल-कांगनी १ छिदाम, चीनी १ छिदाम।

टिप्पणी—मालकांगनी को साफ कर घी में धीमी-धीमी आग्न से अवश्य भून लेना चाहिये।

शीतल योग

स्वामीजी के शिष्य मोतीकटरा निवासी मूलचन्द वर्मा कहा करते थे कि स्वामीजी ग्रीष्म ऋतु में ब्राह्मी, बादाम, शङ्खाहूली और काली मिर्चों की ठण्डाई पिया करते थे और इसे बुद्धि-स्मृतिवर्द्धक बताते थे।

टि० एक तन्दुरुस्त जवान आदमी के लिये ब्राह्मी ४ माशे, शङ्खाहूली ४ माशे, बादाम १८ नग और काली मिर्च ४ माशे काफी हैं, इच्छानुसार शक्कर दूध मिला सकते हैं।

जब से स्वामीजी ने अपने को ब्राह्मी सेवन करने वाला कहा तब से ब्राह्मी के बुद्धिवर्द्धक गुण की प्रशंसा विशेषतया देश-व्यापी हो गई है। स्वामीजी ने संस्कार विधि पृष्ठ ४२ में लिखा है कि "दधि में सुण्ठी (सोंठ) और ब्राह्मी औषधी का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिस से सन्तान अति बुद्धिमान् रोग रहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली होवे।"

उत्तम स्वरकारक योग

कुलिंजन के टुकड़े करके एक एक विद्यार्थी को पाठशाला में खिलाया करते थे।

टिप्पणी—स्वर साफ करने के लिये कुलिंजन का निम्न लिखित मिश्रित योग बड़ा प्रसिद्ध है:—

मिर्च कुलिंजन बावची वच पीपल उनमान।
ये पांचों मधुपान कर कोकिल कण्ठ समान॥

अर्थात् काली मिर्च, कुलिञ्जन, वाचची, वच और पीपल छोटी इन सब वस्तुओं को अलग अलग कूट छान कर समान भाग मिला लें। यह चूर्ण ३–४ माशे ले शहद में मिला कर चाटने से कण्ठ कोयल के समान सुरीला हो जाता है।

पाचक चूर्ण

ठा० जगन्नाथसिंहजी हाकिम चित्तौड़ राज्य उदयपुर ने वर्णन किया है कि स्वामीजी ने यह चूर्ण मुझे बताया था।

हींग, दोनों जीरे, सोंठ, पीपल छोटी, अजवायन, काली-मिर्च और सेंधा नमक इन सब को बराबर लें। हींग और दोनों जीरों को कोरे बर्त्तन में भून लें फिर सब को कूट पीस कर चूर्ण कर लें और ३ माशे रोटी के साथ प्रथम ग्रास में खावें।

टि०—यह प्रयोग वैद्यक का सुप्रसिद्ध हिंग्वाष्टक-चूर्ण है। गुल्म के लिये भी विशेष उपयोगी है, अजीर्ण के लिये अच्छी वस्तु है।

दन्त–मञ्जन

दांतों के हिलने और बादी रफा करने के लिये।

लाला रामजीलाल साकिन मुरादाबाद को स्वामीजी ने २ अगस्त सन् १८७६ ई० को मुक़ाम बदायूं लाला गंगारामजी रस्तोगी के बाग़ में बताया था:—

रूमी मस्तगी २ तोला नीला थोथा २ तोला माजूफल २ तोला मुलैठी २ तोला।

विधि—

पहिले नीले थोथे को आग पर रख कर खील कर लें गरम ही गरम इतने जल में बुझा कर अलग रख लें, जितने में कि सम्पूर्ण औषधें तर हो जावें।

फिर पांचों वस्तुओं को अलग अलग पीस कर पानी में मिलावें। पश्चात् सब के बराबर आक की जड़ का छिलका डाल कर लोहे की कढ़ाई में पत्थर की मूसली से अञ्जन के मानिन्द महीन पीस लें। नित्य प्रातःकाल दन्त धावन से निवृत्त होकर मलें, दो घण्टे पश्चात् जल से धोवै।

टि०—इस योग में पाँचवीं वस्तु पपड़िया कत्था है लेखक की भूल से छूट गयी है। श्रीरामविलासजी ने स्वलिखित स्वामीजी के जीवन चरित्र के क्रोड़पत्र में लिखा है कि:— "मञ्जन का नुसखा जो बहुत ही आला है और जिस को पं० चण्डिकाप्रसादजी चीफ़ क्लर्क कैरिज सुपरिन्टेन्डेन्ट के दफ्तर ने १५ वर्ष बराबर आज़माया है। जिस को स्वामी ने उन्हें १८७६ में आगरे के मुकाम पर बताया था, और प्रशंसा की थी कि इस से बढ़ कर उत्तम नुसखा दूसरा नहीं है। जिस को उक्त पंडितजी ने तज्रुबे से ऐसा ही पाया है, यहां दर्ज करते हैं:—

मुलैटी, माजुफल, पपड़िया कत्था, रूमीमस्तगी, नीला थोथा सब हमवजन लेवे, नीले थोथे का फूला बना लें और लोहे की कढ़ाई में बुझावे और आक की जड़ मिला कर खूब बारीक पीस कर मञ्जन करें सब प्रकार के दांतों के रोग दूर रहें।"

बुझाने की विधि—

नीलाथोथा फूला पानी में मिला कर अलग रख लिया। शेष औषधियाँ कूट कर कढ़ाई में रख चूल्हे पर चढ़ा दो जब उन में अग्नि लग गई तो नीलाथोथा मिले हुये जल से बुझा कर ढक दो। ठण्डी हो जाने पर आक की जड़ मिला कर पीसलो, बस मञ्जन तैयार हो गया। मोटा मञ्जन रहने से मसूड़े छिल जाने का भय रहता है। इस विधि से बने मञ्जन का रङ्ग काला होता है। यह मञ्जन सुगन्धित भी है परन्तु, मिस्सी की तरह जम जाता है। हिलते दांत भी कुछ दिन में जम जाते हैं। यदि इस नुसखे में से माजूफल निकाल दिया जाता है तो यह कालापन तो घट जाता है परन्तु, फिर मञ्जन में दांतों को जमाने की पहली सी शक्ति नहीं रहती।

पं० लेखरामजी की विधि सरल है। इस में मञ्जन का वजन भी अधिक होता है, परन्तु इस विधि से जो मञ्जन बनता है वह कसैला अधिक होता है और सुगन्धित कम।

स्वामी मञ्जन

राकेश के सिद्ध योगांक में पटना की आयुर्वेद विशारदा पं० गंगादेवीजी राजवैद्या ने स्वामी मञ्जन के नाम से एक मञ्जन का योग प्रकाशित कराया था और उसे स्वामी दयानन्दजी का बताया हुआ लिखा है। वह योग इस से कुछ भिन्न ही है। उसे हम ज्यों का त्यों यहां उद्धृत करते हैं:—

मुलैठी, माजूफल, कत्था पपड़िया, फिटकरी, रूमी मस्तगी, नीलाथोथा, आक की जड़ की छाल, इमली की छाल इन सब को एक एक तोला लेकर नीचे लिखी विधि से बना लें।

विधि—

चूर्ण कर लोहे की कढ़ाई में धीमी आंच से भून लें। पुनः लौंग का तेल, इलायची का तेल ३-३ माशे मिला कर शीशी में रख लें।

गुण—

यह स्वर्गीय दयानन्द का बताया हुआ योग है और वह परीक्षित योग है। इस के सेवन से मसूड़ों से खून व मवाद का आना, दर्द होना, हिलना आदि आराम होता है। मञ्जन दोनों समय लगा कर गुनगुने जल से कुल्ला कर लेना चाहिये, यदि ठण्डे जल से कुल्ला न किया जाय तो स्त्रियों के लिये दन्त मञ्जन (मिस्सी) का काम देता है।

दाद का मरहम

गन्धक एक छटांक, चौकिया सुहागा १ छटांक, सीप का चूना १ छटांक, राल १ छटांक।

सब वस्तुओं को पीस भैंस के ताजा घी में मिला कर लगावें।

टि०-सीप का चूल्हे में जलाने से चूना बन जायगा।

दाद की गोली

सुहागा तेलिया (चौकिया) राई सफेद (जो आचार में गेरी जाती है) राल, गन्धकः—

समान भाग पृथक् पृथक् पीसे, मिला कर पानी के योग से गोली बनावें। चिकने पत्थर पर घिस कर लगावें। तीन चार दिन लगाने से ही आराम हो जाता है। यह योग लाला गोपालप्रसादजी के स्मरण में है।

तिल्ली का इलाज

यह निर्बलता से होती है। भोजन करते समय हाथ से तिल्ली दबा लेवे जब तक भोजन करते रहे ऊपर को दबाये रक्खे, दस पन्द्रह दिन के पश्चात् स्थान पर आजायगी।

सांप के काटे का इलाज

जब सांप काटे तो पहिले थोड़ा सा रक्त निकाल जरा ऊपर से बांध देना। साधारण सर्प के लिये चूने में थोड़ा सा नमक मिला कर लगा दो नीचे लिखी औषधि पहिले से तैयार रक्खें, आवश्यकता के समय काम में आ सकती है। औषधि प्रस्तुत करने की विधि यह है:—

जमालगोटे की साबत गिरी को सात दिन तक नींबू के रस में भिगो कर छाया में शुष्क करे। जब सांप के काटने से बेहोशी हो गई हो तो सलाई से रोगी की आंख में लगादो फौरन आराम हो जायगा। आंख दुखेगी, जिसकी चिकित्सा हो सकती है। अपामार्ग (ओंगा) जिस को पंजाबी में पुठन्डा और पूर्व में चिरचिटा कहते हैं, जड़ सहित दो माशा काली मिर्च के साथ रगड़ कर पिलाओ। पांच या सात बार पानी हलक तक पियो और उल्टी (कै) कर डालो। जिस जगह काटा हो वहां का रक्त निकाल जल में नमक घिस कर लगाओ और एक कपड़ा पानी में तर कर जख्म पर रखो, ऊपर नमक पीस कर लगा दो।

बिच्छू के लिये भी यही इलाज है।

टि०—बिच्छू-बर्र आदि किसी भी जहरीले जानवर ने काटा है तो उक्त जमालगोटा पानी में घिस कर लगा देने से फौरन

फायदा हो जाता है। यह हम ने भी अनुभव किया है। हम तो जमालगोटे को नींबू के रस में घोट कर गोलियाँ बना रखते हैं।

विष चिकित्सा

किसी ने कोई विष खा लिया हो तो इस का इलाज यह है कि–जल में थोड़ा नमक मिला कर पिला दो। बार बार जब तक खुश्की मालूम न हो कै करायें।

खांसी श्वास

वाय विडङ्ग ३ माशा और पांच सात काली मिर्च तथा थोड़ी सी सोंठ पीस आधा सेर पानी में डाल कर गर्म करें। कुछ शीतल होने पर पीवें ५ मिनट तक गले में रक्खें पश्चात् कुल्ला कर निकाल दें। फिर तीसरे दिन ऐसे ही करें। जब तक आराम न हो यह क्रिया करते रहें। अम्ल वस्तुओं और लाल मिर्च, दही आदि से बचते रहें।

खूनी–बादी बवासीर

पांच सात नीम की निबौली पेड़ से तोड़ कर सुबह दांतुन करने के बाद निगल जावें। यदि शुष्क निबौली हो तो कपड़े में बांध रात भर भिगो रक्खें प्रातःकाल काम में लावें। जब तक लाभ न हो सेवन करते रहें। तेल, नमक लाल मिर्च खटाई से परहेज रक्खें। नमक कम खावें।

रक्तार्श

शीतल चीनी दो माशे शक्कर के साथ मिला पानी से लें। रक्तस्राव, खुजली आदि शीघ्र शान्त हो जाते हैं। यह प्रयोग मूलचन्द वर्मा की स्मृति में है। हमारा भी अनुभूत है।

गोली हाजमा

आक के फूल की वौंड़ी पाव भर, गोल मिर्च पौन तोला, काला नमक पौन तोला, तीनों को पीस गोली बना कर धूप में सुखा लें।

टी०-यह बटी खांसी के लिये भी विशेष हितकर है हम इस में काली मिर्च बौडी के समान ही गेरते हैं। बटी चने के बराबर बनानी चाहिये)

दांत के दर्द की दवा

१—तम्बाखू का गुल पीसलो इसे और निसवार (हुलस) को मलो।

२—कत्था पीस कर दांतों से मलने से दांत मजबूत रहते हैं।

३—कुटकी पीस कर तीन चार माशे रात को पानी से तीन चार रोज तक लें।

ज्वर पर प्रयोग

लाला गोपालसहायजी कायस्थ की जबानी—

सत गिलोय, बंशलोचन, छोटी इलायची, छोटी पीपल चारों बराबर लेकर शहद में गोली बनालो।

टि०-गोली बेर के बराबर बनानी चाहिये दो दो गोली तीन ३ घण्टे बाद शहद मिला कर चटावें।

अभ्रक भस्म

अभ्रक को काट कूट कर बथुये का रस निकाल घड़ा भर कर रख दो तीन दिन खरल कर एक एक जङ्गली उपले बिछा दो।

टि०—पहले अभ्रक को अग्नि में तपा तपा कर तिल, तेल, मट्ठे, गाय के पेशाब, कांजी, कुलथी के काढ़े और त्रिफले के काढे में सात सात बार बुझा कर शुद्ध कर लें। फिर कूट कर खूब महीन करके बथुवे के रस में खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बना लें। इस की भस्म करने की दो विधियाँ हो सकती हैं:—

प्रथम विधि—

गोबर के मोटे उपले बनवा कर खूब सुखा लें। सूखने पर एक उपले में अभ्रक की टिकियों से जरा बड़े और गहरे गढ़े खोद दें। हर एक गढ़े में अभ्रक की एक एक टिकियाँ रख दें। अब इस बड़े उपले पर एक और बड़ा उपला बिना गढ़े किया हुआ रख दें। इस तरह जितनी आवश्यकता हो उतने उपले तैयार करलें। इस के बाद जमीन पर अरने बिछालें अरनों के ऊपर होशियारी से इन टिकियों वाले उपलों को रख दें उपलों पर और अरने रख कर अग्नि जला दें। दूसरे दिन जब अग्नि बिलकुल बुझ कर राख ठण्डी हो जाय तब होशियारी से राख हटा कर अभ्रक की टिकियां बीन लें। इसी प्रकार अभ्रक को बथुए के रस में घोट कर तब तक अग्नि देते रहें। जब तक कि अभ्रक में जरासी भी चमक रहे। जब चमक बिल्कुल न रहे तब समझावें कि अभ्रक भस्म हो गया। कच्चा अभ्रक नुकसान करता है।

दूसरी विधि—

अभ्रक को बथुवे के रस में घोट कर सुखाई टिकियों को दो प्यालों में बन्द कर उन्हें कपड़ मिट्टी करके सुखालें। एक

इस प्रकार जब २१ बार बेंगन में रख रख कर भुरता कर लिया जाय तब ऊपर लिखी विधि से संखिये को भस्म करें, तब ही यह उत्तम बनेगा। यह भस्म हर प्रकार के शीतज्वर के लिये लाभदायक है। ज्वरवेग को रोकने के लिये कुनैन से भी बढ़ कर है। परन्तु इस प्रयोग को देने से पूर्व रोगी को दो एक दस्त अवश्य करा देना चाहिये। सोंठ दस्त के लिये सौंफ, सनाय, सेंधा नमक, बड़ी हर्र का बक्कल, और काला दाना भुना हुआ समान भाग ले चूर्ण कर लें। ४-६ माशा गर्म जल से ले लेने से खुल कर एक दो दस्त हो जाते हैं। जिस को यह भस्म दी जाय उसे दूध अवश्य दें।

शिंगरफ-भस्म

शिंगरफ एक तोला की एक डली लो और छटांक भर भिलावें को खूब महीन काट कर मिट्टी के प्याले में डाल इस में शिंगरफ की डली रख देना फिर इस कोयले की दो तीन बार अग्नि दें।

टि०-शिंगरफ रूमी को दो तीन दिन तक नीबू के रस में घोट कर शुद्ध कर टिकिया बना लेनी चाहिये। जब टिकिया सूख जाय तब शिंगरफ को संखिये की तरह भिलावे के चूर्ण में दाब दें और अभ्रक की तरह संपुट कर १ बालिश्त लम्बे चौड़े गहरे गोल गडढे में अग्नि दें। यह भस्म अत्यन्त बलकारक रसायन तथा रक्तशोधक है। मिर्च, तेल, खटाई से परहेज रखें। घी, दूध खायें। मात्रा-एक चावल मक्खन या दूध की मलाई में मिला कर खावें।

गज गहरे व चौड़े गढ़्ढे को आधा जंगली (अरनों से भरें उस के बीच में प्यालों को रख कर ऊपर से और उपले भर कर अग्नि दे दें। दूसरे दिन अग्नि शान्त होने पर निकाल लें और बथुए के रस में फिर घोट कर पूर्ववत् अग्नि दे। जब बिल्कुल चमक न रहें तब भस्म ठीक समझें। अन्यथा चमक दूर होने तक यहां क्रिया करते रहें। यह भस्म अत्यन्त बलवर्द्धक रसायन हैं राजयक्ष्मादि सम्पूर्ण रोगों को नशा करती है। शहद या मक्खन आदि में चटावें मात्रा १ रत्ती हम दूसरी विधि से ही भस्म करते हैं। इस में विनष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती।

संखिया भस्म

संखिया सफेद या काला २ तोला सिन्दूर एक सेर। किसी मटकी का किनारा फोड़ कर या किसी मट्टी की नांद के नीचे कपड़ मिट्टी कर सुखाले। इस में आधा सेर सिन्दूर खूब दाब-दाब कर भर दें पुनः इस पर संखिये की डली को रख कर शेष आध सेर सिन्दूर भी डाल खूब दाब दें। अब इसे चूल्हे पर चढ़ावें नीचे मन्द मन्द अग्नि दें। जब ऊपर का सिन्दूर जल जायगा संखिया फटेगा तब उस पर और सिन्दूर डाल अग्नि बन्द कर देनी चाहिये। बिलकुल शीतल होने पर संखिये को निकाल लें, बताशे की तरह फूल जायगा-मात्रा १ चावल, तुलसी के रस या पत्ते के साथ दें। चौथइया ज्वर के लिये विशेष हितकर है।

टि०—पहले संखिये की डेली कोबेंगन के भीतर रख कर उस पर कपर मिट्टी कर दें भूबल में बेंगन का भुरता कर लें।

सर्वौषधि—घृत

आमाहल्दी, खाने की हल्दी, चन्दन, मुरा (दक्षिण में इसी नाम में प्रसिद्ध है) कुष्ट (मीठा कूठ) जटामासी, मोरबेल (यह नाम भी दक्षिण में प्रसिद्ध है) शिलाजीत शुद्ध, कपूर मुस्ता (मोथा) भद्रमोथा (नागरमोथा) ये सब वस्तुएं समान भाग लेकर खूब महीन चूर्ण कर लें। यदि यह चूर्ण एक छटांक हो तो गाय के ओटे हुए गर्म दूध सेर भर में मिला कर उस का दही जमा दें। दही उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी के बने हुए पात्र में जमाना चाहिये। जब दही जम जाय तब उसे उदुम्बर ही की लकड़ी की मंथनी (रई) से मंथन कर उस में मक्खन (लौनी) निकाल लें। इस लौनी-मक्खन को अग्नि पर ताय कर घी निकाल लें। जो कि लगभग एक छटांक होगा। इस घृत में कस्तूरी २ रत्ती, केशर, जायफल, जावित्री और छोटी इलायची के दाने ये चारों वस्तुएं एक एक माशे डाल कर खरल में खूब रगड़ें, जब सब वस्तुएं घृत में लय हो जावें तब ढक्कनदार कांच की शीशी में भर कर रख लें। मात्रा—४ माशे से १ तोले तक। खीर या भात में मिला कर खावें।

गुण—बलवर्द्धक, गर्भकारक; मृतवत्सा रोग (अठरा—बच्चों का बार बार मर जाना) नाशक, गर्भ स्तम्भक है। यदि दूसरे, तीसरे आदि महीने में गर्भ गिर जाता हो तो इस के सेवन से गर्भ स्थिर हो जाता है, यह स्त्री पुरुष दोनों ही के लिये समान लाभ प्रद है। पुरुषों की निर्बलता, नपुंसकता और वीर्य रोगों को नाश करता है।

स्वामीजी को कथित सेवन विधि—

नित्य प्रातःकाल उस घी में से संस्कार विधि के पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ ४२ में ४३ लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ (सात) मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भ स्थापन क्रिया करनी हो उस दिन में होम करके उसी घी को दोनों जनें खीर अथवा भात के साथ मिला के यथा रुचि भोजन करें इस प्रकार गर्भ-स्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे, यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि—

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥"

यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् शुद्ध आहार जो कि मद्यमांसादि रहित घृत दुग्धादि चावल गेहूँ आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह करें इस प्रकार विधि कर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्य-प्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें जब रजस्वला होने के समय में १२-१३ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन तक व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवे जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इस

के न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है। सं० वि०)

गर्भकारक योग

यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायं अर्थात् दो वार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो माशा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो माशा लेके इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में देके उस से पति पूछे "किं पिवसी" इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" वाक्य को तीन वार बोल कर उत्तर देवे और उस का प्रश्न करे इसी रीति से पुनः पुनः तीन वार विधि करना तत्पश्चात् सङ्खाहूली व भटकटाई औषधि को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन (टपकावे) करे और पति—

ओ३म् यमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ।
अस्या अह बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे यह सूत्रकार का मत है।

टि०—नाक में ८-१० बिन्दु रस के टपकाये।

गर्भिणी का आहार विहार

कोई मादक मद्य आदि रेचक हरीत की आदि क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लाल मिर्च आदि स्त्री कभी न खावें किन्तु घृत, दुग्ध, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि औषधि, चावल, मिष्ठ, दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें उस में ऋतु ऋतु के मसाले गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और सर्दी में केसर कस्तूरी आदि डाल कर खाया करें। युक्ताहार-विहार सदा किया करें। दधि में शुन्ठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे। जिस से सन्तान अति बुद्धिमान् रोग रहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला होवे। (संस्कार विधि)

बुद्धिमान् सन्तान कारक योग

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने शुक्ल पक्ष में जिस दिन चन्द्रमा मूल आदि पुरुष नक्षत्र युक्त हो वटवृक्ष (वड़) की जटा वा उस की पत्ती ले के स्त्री के दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुड़च (गिलोय) वा ब्राह्मी औषधि खिलावे। स्वामीजी आगे लिखते हैं—

वटवृक्ष (बड़) के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बांट कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नाशापुट में सुंघावे।

इस के पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे विशेष-कर गिलोय ब्राह्मी औषधि और शून्ठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण,

अधिक खारा खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक, हरड़ें आदि न खावें सूक्ष्म (हलका थोड़ा) आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे। (संस्कार विधिः)

बलकारक दुग्ध

(साधारण ऋतुओं के लिये)

सोंठ, मिर्च, असगंध, सफेद इलायची, सालम मिश्री डालकर रक्खा हुआ जो ठंडा दूध है, सम्भोग के बाद पीवें। [स० प्र०] टि०—एक स्वस्थ्य जोड़ी के लिये निम्न लिखित मात्रा ठीक होगी सोंठ ६ माशे काली मिर्च ३ माशे, नागौरी असगंध १ तोला, छोटी इलायची दाना २ माशे, सालम मिश्री १ तोला लेकर खूब महीन कूट लें और एक बहुत साफ कपड़े में पोटली बांधकर दो या डेढ़ सेर दूध में डाल दें। जब दूध औंट जावे तब उतार लें। पीते समय पोटली अलग कर दें। और इच्छा अनुसार मिश्री डालकर पीवें। अत्यन्त बल कारक है, संभोग के पश्चात् इसे पीने से रति के पीछे जो निर्बलता हो जाया करती है वह नहीं होने पाती। यदि यह संयम पूर्वक नित्य पीया जाय तो यह मनुष्य को वाराह की तरह पुष्ट कर देगा। जल्द बुढ़ापा न आने देगा।

बलवर्द्धक दुग्ध

(शीतकाल के लिये)

केसर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची डाल गर्म रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पृथक् २ शयन

करें। टि० जायफल ३ माशा, जावित्री २ माशा, इलायची दाना ३ माशा की पोटली डाल कर पहली तरह दूध औटावें। पीते समय केशर १ माशा कस्तूरी एक या दो रती पीसी हुई मिश्री के साथ दूध में मिलाकर पीवें। यह योग बलकारक होने अतिरिक्त उत्तेजक भी है। बूढ़ों का तो जीवन प्राण है।

बलकारक मोहनभोग

मिश्री एक सेर, सूजी आधा सेर, घी डेढ़ सेर, जल दो सेर, केशर एक माशे कस्तूरी १ रत्ती जायफल १ माशे जावित्री एक माशे।

विधि—

पहले मिश्री को गर्म पानी में गला शर्बत बना छान कर अङ्गारों पर रख दें। फिर घी को कढ़ाई में मीठी २ आंच पर चढ़ायें जब घी गरम हो जाय तब सूजी डाल कर उसे खुर्पी से बराबर चलाते रहें ताकि कहीं दाग न लगने पावे और सूजी सब ठीक २ भुन जाय॥ जब सूजी भुजने की खूशबू आने लगे तब मिश्री को गर्म पानी घोल छान कर जो पानी पहले से रखा था उस मीठे जल को मिला दें और साथ ही केसर आदि मिला हुआ घी भी डाल दें आंच तेज कर दें। और उसे बगलियों से चलाते पलटते रहें जब खदक कर गाढ़ा हो जाय तब उतार कर किसी थाली से ५-७ मिनट ढक दे।

सौभाग्य शुण्ठि पाक

स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि में प्रसूता (जच्चा) स्त्रियों को सौभाग्य शुण्ठी पाक जिसे सुहाग सौंठ भी

कहते हैं, खाते रहने का आदेश दिया है। परन्तु, इसका कोई नुसखा नहीं लिखा। न लिखने का कारण यह मालूम होता है कि इस प्रयोग को प्रत्येक स्त्री जानती थी। किन्तु अब दुःख इस बात का है कि स्त्रियां दिन पर दिन सारी ही ललित कलाओं को भूलती जाती हैं. जरा २ से दुःख के लिये डाक्टर वैद्य और हकीमों के पास जाकर पैसा बरबाद करती हैं। प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य तो यह है कि कम से कम स्वास्थ्य रक्षा के नियम और रोगों की साधारण रोक थाम अवश्य ज न लें ताकि समय पर अपनी और बाल बच्चों की रक्षा कर सकें। अस्तु। वैद्यक ग्रन्थों में सौभाग्य शुण्ठी पाक के कई प्रयोग हैं, हम उनमें से एक उत्तम योग यहां लिख देते हैं:—

योग—

सौंठ १॥ पाव, दारचीनी १॥ तोला, इलायची लघु २ तोला, कृष्ण जीरा १ तोला, अकरकरा १॥ तोला, विधारी १॥ तोला, पिपला मूल १ तोला, बरियारा मूल २ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, सफेद जीरा १ तोला, कृष्ण मरिच १॥ तोला, सिंगाड़ा २ तोला, अजमोद १ तोला, दाख १५ तोला, बादाम गिरी २० तोला, तजपत्र १ तोला, नाग केशर १॥ तोला, जावित्री १ तोला, कमल गट्टा की मींगी सफेद १॥ तोला, त्रिफला २ तोला, च य १ तोला, नागर मोथा १॥ तोला, काला अगर १ तोला, नागौरी असगंध २ तोला, लौंग १॥ तोला, सफेद मूसली २ तोला, पींपल छोटी १ तोला, जायफल १ तोला, कङ्कोल मरिच १॥ तोला गाय का घी १५ तोला, अखरोट गिरी १५ तोला, पिस्ता गिरी २० तोला, गोदुग्ध ५ सेर खांड २॥ सेर।

विधि—

सौंठ को कूट छान कर दुग्ध में डाल कर पकावें, जब खोया बन जावे तो घृत डालकर भून लें, ध्यान रहे कि न जले न कच्चा रहे, केवल लाल हो जाय, फिर खांड की चाशनी बनाकर सब औषधियां कूट छान कर खोया सहित चाशनी में डालकर २-२ तोले के लड्डू बना कर रखें, प्रातः समय १ लड्डू खाकर ऊपर से गरम दूध पीवें ॥

गुण—

यह पाक प्रसूता स्त्रियों के लिये विशेष लाभदायक है। प्रसूत रोग (इस रोग में स्त्रियों का चांद—सिर में दर्द ज्वर सब शरीर में पीड़ा पैरों में ऐंठन होती है) की सर्वोत्तम औषधि है। मक्कलशूल (बच्चा उत्पन्न होते समय यदि जेर का कुछ भाग रह जाता है या रक्त रुक जाता है। तो उससे गर्भाशय में सूजन होने से जच्चा को ज्वर, शिर, हृदय, पेडू में दर्द होता है) को दूर करता है। बल और अग्नि को बढ़ाता है, रंग को निखारता है। गठिया को भी लाभदायक है, प्रदर सोमरोग (इस रोग में पेशाब बार २ होता है उसको रोका भी नहीं जा सकता। पेशाब सफेद, निर्गन्ध और बिना तकलीफ के होता है, स्त्री दिन दिन निर्बल होती जाती है) में हितकर है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन पुस्तक से

सम्पादक—महर्षि के अनन्य भक्त पं भगवद्दत्त बी० ए०

१. सर्पौषधी:—(१) जिस किसी को सांप काटे, उसको तुरन्त ही एक रीठा कुछ पानी में घिसकर पिलाना चाहिए; तुरन्त ही विष जाता रहेगा।

(२) नीमगिलोय को बांट के पीवे. यदि मूर्छा आ गई हो तो जहाँ तक हो सके वहाँ तक पिचकारी से नीमगिलोय को पेट में पहुँचावे, तो वह बच जाय।

२. औषध गोहरे के विष की:—दोनाम्रवा पैसे भर पानी में पीसकर मिला दे, यदि मूर्छित हो गया हो तो पिचकारी से पेट में पहुँचावे तो अच्छा हो जाय।

३. वाला की औषधी:—छः मासे आक का दूध और बारह मासे गुड़. दोनों को मिलाकर टिकड़ी करके एक, दो अथवा तीन वार वाले पर लगा दे तो बाला जाय।

४. हड़के कुत्ते की औषधी:—(१) सफेद तिल का तेल और आकरा दूध बराबर मिला के कुत्ता के काटे हुए घाव में लगा दे, इससे अच्छा हो जायगा।

(२) पुराना घृत धतूरे के बीज और आक का दूध अथवा घृत आक का, दूध और गुड़ इनको जल में पीसकर घाव में लगा देने से अच्छा हो जाता है।

५. वीर्य पुष्ट होने का साधनः—सूखे आंवलों को कूट छान उसके बराबर मिश्री मिला कर गौ के दूध के साथ प्रात सांय १ तोले भर की फकी लेवे तो प्रमेह आदि के रोग जांय।

६. पेट पीड़ा की औषधिः—सोंठ सुहागा, हींग, इनको बराबर लेकर सहजने की छाल अर्क में घोट कर गोली बांध लेवें, एक गोली गर्म जल के साथ खिला देवे तो पेट पीड़ा जाय।

७. रुधिर शोधक की औषधिः—फिटकड़ी के फूले कर पीस के उसको १ मासे वा जितनी पचे अथवा जो रुचि होंवे तो पावभर छाछ अथवा जितनी छाछ की रुचि हो उतनी में मिलाय कर पीवे, तो सब प्रकार की रुधिर विकार व्याधी छूट जावे तथा खांसी बवासीर आदि में भी गुण करे।

८. मूत्रकृच्छ्र और पथरी की औषधिः—एक लाल मिर्च मीठा छाछ में आठ पहर भिजो कर निकाल लेवे फिर उस छाछ को फेंक और दूसरी छाछ में पीसकर जितनी छाछ पीने की इच्छा हो उतनी में छानकर पीवें इसी प्रकार दूसरे दिन दो मिरची और तीसरे दिन तीन, ऐसे ही सात दिन तक चढ़ता उतरता जाय। इस समय खट्टा गुड़, तेल और नोंन को न खाय तो मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग छूट जाय।

९. गर्भ स्राव की सम्भावित औषधिः—जड़ सहित दूब एक पैसे भर १७ काली मिरचों को पीस छान के ७ दिन गर्भाधान के पूर्व और ७ दिन गर्भाधान के पश्चात् तथा चौथे महीने में भी ७ दिन पीवे तो गर्भस्रवित न हो।

१०. काली फुंसी का औषधः—काली फुंसी पर सोने की शलाका का चारों ओर दाह देवे तो वह अच्छा होय।

११. जो सुजाक से सुजाक हो जाता है उसकी परिक्षित औषधी:—(१) सुदर्शन के पत्तों का अर्क निकाल उसकी पिचकारी भर लगावे और पत्तों को पीसकर घाव पर लगा देवे तो सात रोज में व्रण सूख जावे और उसी के पत्ते को छः माशे मिश्री के साथ जो खावे तो इक्कीस दिन के उपरान्त सुजाक फिर कभी न होवे।

(२) नींबू को लेकर दो फांक बना उनमें चावल (भर) फिटकड़ी पीस के भर रात को ओस में रख दे और सात दिन तक चूसने में सुजाक जाता रहे।

१२. प्रमेह का औषधः—बंबूल की फली, पत्ती, गोंद, छाल और गूदा सब चीज बराबर ले पीसकर पूर्ण रख ले फिर बराबर की मिश्री के साथ मिलाकर तोले तोले भर खा ऊपर से आधा सेर दूध में आधा सेर जल और शक्कर मिला पीवे तो अट्ठारह प्रकार का प्रमेह जाय।

१३. पुनस्तथा:—गुल खैर के फूल को पीस शहद मिलाय पानी में छान ठंडाई बना ४१ दिन तक पीवें तो वीर्य पुष्ट हो जाय।

१४. रक्तविकार की औषधि:—दो पैसे भर मेंहदी और मधु मिला पीस के खावे और यत्न से भोजन ऐसी चीजें न खाय जिनसे रुधिर न बढ़े तथा चने की रोटी अरहर की दाल चावल आदि खावै और———सेवन करे तो रक्तविकार जाय।

१५. उन्माद की औषधि:—दो पैसे भर मुलहटी को शहद में मिला के ७ दिन खाय और दाल चावल कढ़ी आदि खाय तो उन्माद जाता रहे।

१६. उपदंश की औषधिः—आंवले दूध या शहद के साथ १ तोले भर खावे तो उपदंश जाय।

१७. जीर्ण ज्वर की औषधिः—खूबकला एक तोला भर रात को पानी में भिगो दे प्रातःकाल मिश्री के साथ शर्बत बनाकर पीवे और घी न खावै और घी की जगह बादाम का रोगन खाय तो २१ दिन में जीर्ण ज्वर जाय परन्तु बासा पानी में नहाता रहे।

१८. पुष्टिकर औषधः—एक सेर भर प्याज के छिलके उतार छोटे २ टुकड़े कर कोरे बर्तन में सहत के साथ भिगो दे फिर १५ दिन तक भूमि में गाड़ दें, निकाल कर पश्चात् एक तोले भर नित्य खावै तो पुष्टि प्राप्त हो जाय।

१९. जमीकन्द के बनाने की रीतिः—सेर भर जमीकन्द को शुद्ध करके आध पाव अदरक के साथ उबाल मसाले डाल शाक बनाले।

२०. पेट के शूल की औषधिः—एकर दो तोले एक तोले भर पियाज का रस, अधरख का रस और शहद इन तीनों को मिलाकर दिन में तीन समय पीवै तो शूल रोग जावै।

२१. पसली के दर्द की औषधः—(१) पुराना महुवा पाव भर ले कूट कपड़े में बांध दो घड़ी के पश्चात् पुनः उसी को रोटी बनाकर ४ पहर बंधा रहने दे तो पसली की पीड़ा जाय। (२) सांभर का सींग घिसकर पसली पर लगा के कंडे से सेक करै तो पसली का दर्द जाता रहे।

२२. आंखों का सुरमा:—सुरमे की डली को नीम के वृक्ष में २१ दिन तक रख दे, पुनः निकाल भंगरे के रस में छोटी इलायची डाल खूब पीस के रख ले, उसका नेत्रों में लगाने से वर्षों तक की दुखती आंखें शुद्ध हो जाय।

२३. श्याम केशकारक तेल:—पलाश के वृक्ष के नीचे जो बीच की जड़ हो उसको मूसला कहते हैं उसके नीचे खड्डा खुदवाकर आधी जड़ काट नीचे खाली जगह में एक वर्तन कली कराया हुआ रख दे ऊपर से ढकना लगा इस प्रमाण छेद बीच में रहने दे कि जिससे मूसले की जड़ ठीक बैठ जाय, पुनः उसके चारों ओर मट्टी चुनकर और ऊपर से मट्टी डालकर फिर वृक्षों के चारों ओर कंडों की आंच लगा दे। जितना अर्क उस पात्र में निकल आवै उतना ही सरसों का कडुआ तेल मिलाकर कढ़ाई में औटावे, जब तेल आधा रह जाय तब कढ़ाई को उतार कर उसमें माजूफल एक मासे भर, एक तोले भर लोहे का रेतन और एक मासे भर नीलाथोथा ये सब चीजें पीसकर तेल में मिला सीसे में भरकर रख दे फिर उसको रात के समय बालों के लगा ऊपर से पान लपेट के सो जावें तो प्रातःकाल तक श्याम केश हो जाय।

२४. ज्वर की औषधि:—छः मासे भर फटकड़ी गर्म जल में जब दोपारी का समय आवै तब पीसकर पी जाय और पारी तक भोजन न करे तो ज्वर जाय।

२५. बीछू की औषधि:—जब किसी को बीछू काटै तब लून को पीस एक पात्र में रख दें और दूसरे पात्र में जल रखें। अंगुली के अग्र भाग से जल स्पर्श करके उससे पीसा हुआ

लून लगा के जहाँ बीछू काटा हो उस पर फोरे फोरे हाथ से मले। पुनः इसी प्रकार वार वार करने से थोड़ी ही देर में बीछू झट उतर जाता है। जब डंक पर कुछ जलता रहता है उस पर दो पैसे भर लून को थोड़े से जल में घोलकर उसमें रुई भिजो के डंक पर बांध देवे तो नींद आ जायगी और डंक पर से भी पीड़ा मिट जायगी।

नोटः—किसी भी महात्मा सन्यासी पुरुष माता भाई बहन के पास कोई श्री महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती का प्रयोग हो भेजें हम उनके आभारी होगें और अपने आर्यप्रेमी में छापेंगे।

प्रभु सर्व धनों के दाता हैं

हे इन्द्र महाराजाधिराज,......सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो, आप अत्यन्त आर्द्र-स्वभाव हो।

अधर्मी को दुःख एवं धर्मी को सुख मिलना चाहिये।

हे भगवन्.........अधर्मी के समीप रहने वाले उस के सहायक को भी सुख नहीं हो, ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी नहीं होना चाहिये नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा।

प्रभु सब के कार्य पूर्ण करने वाले हैं।

हे शतक्रतो,......हम को दृढ़ निश्चय है कि आप के बिना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आप को छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं उन के सब काम नष्ट हो जाते हैं।

वे महान् थे !

महात्माजी हमारे प्रमुख शिष्य थे और हमारे में उन की अनन्य निष्ठा और भक्ति और श्रद्धा थी। वे गत १६ वर्ष से हमारे मिशन की पूर्ति कर रहे थे। उन की निष्ठा और सेवा अद्वितीय थी। वे परम वीतराग, तपः पूत और आत्मनिष्ठ थे। वे हजारों पतितों के परित्राता, आर्तों के आर्तिहर्ता, धर्म के उद्धारक और सभ्यता तथा संस्कृति के सुधारक थे। वे भारत की पावन परम्परा के प्रतीक थे। उन के ब्रह्मलोक हो जाने से राष्ट्र की जो क्षति हुई है, उस की पूर्ति होना असम्भव है।

वे विद्वान् तथा ऊंचे दर्जे के लेखक थे। उन के ग्रन्थों के अध्ययन से हजारों पथ-भ्रष्टों को सन्मार्ग लाभ हुआ है। उन के जीवन का निर्वाण हुआ है और वे देश तथा जाति के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। जो धर्म-विमुख थे वे धर्माभिमुख हो गए, जो भक्ति से कोसों दूर थे वे परम भक्त बन गए और जो पतित थे वे पावन बन गए इन की लेखनी में ओज था शक्ति थी तथा प्रभाव था। इन की भाषा मर्मस्पर्शी तथा प्रभावशालिनी थी।

जीवन एक खुला ग्रन्थ था। शिष्यो के लिये आचार, व्यवहार, भक्ति, निष्ठा, श्रद्धा और तप का बृहद् कोष था। महात्माजी को अपने शिष्यों को उपदेश देने की विशेष आवश्यकता न होती थी। वे इन के व्यवहार आचरण और इन की भगवद् निष्ठा, इन के तप, त्याग, ज्ञान, ध्यान तथा सादगी से मौन भाव से शिक्षा ग्रहण करते।

विनम्रता, समवेदना, सहानुभूति, सादगी और सेवा महात्माजी के जीवन की बहुत बड़ी विशेषतायें थी। इन की यज्ञ परायणता की इन के शिष्यों पर बहुत गहरी छाप है। इन्होंने यज्ञ प्रणाली, गायत्री जाप, गायत्री अनुष्ठान और आराधना का विशेष रूप से प्रचार और प्रसार किया है। इन के भक्तों के गृहों में यज्ञाग्नि गत बीस साल से प्रज्वलित है और पीढ़ियों से चली आ रही है। प्रभु सभी को उन के मार्ग पर चलने की प्रेरणा करे।

योगेश्वरानन्द सरस्वती (योग निकेतन ऋषिकेश)

ओ३म्

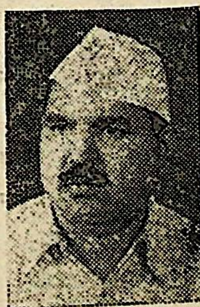
ब्रह्मचर्य

For Private Circulation

(केवल आपके लिये)

● वेद मन्त्रों के आधार पर ●

मूल्य केवल ५ पैसे



प्रकाशक

हकीम वीरूमल 'आर्य प्रेमी'
वैद्य मोहनलाल 'आर्य प्रेमी'

आर्यन फार्मेसी, पोस्ट बाक्स नं० २७
नला बाजार, अजमेर

टेलीफोन नं० ४७२ तार का पता—"आर्य प्रेमी"

मार्च १९६७

१०००० हजार

ओ३म्

महा मंत्र-गायत्री माता

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि,
धियो मो नः प्रचोदयात् ॥ १८ ॥

भावार्थ :- हे दयालु परमात्मन्! आप अपनी असीमु कृपा से हमारी सदा रक्षा करते हैं। आप ही हमारे जीवनधार हैं। अपने सेवकों के दुःखों को दूर करके उनको सुख देने वाले हैं। आप सर्वत्र सुप्रतिष्ठित और सुप्रसिद्ध हैं। आप सर्वोत्म, शुद्ध पवित्र और ज्ञानस्वरूप हैं। आपसे ही यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। आप ही सकल शुभ गुणों की खान हैं। आपका हम प्रतिदिन ध्यान करें और आप हमें विवेकशीलता, धारणावती, मेधा और सद्बुद्धि प्रदान करें अतएव सब मनुष्यों को उचित है कि नित्य, प्रातः व सायंकाल स्वस्थ, एकाग्रचित होकर गुरु-मंत्र का अर्थ चिन्तन सहित आप करें, जिससे के परम पिता परमात्मा द्वारा हमें सुप्रेरणा मिले।

(छप्पय)

"ओ३म्" सच्चिदानन्द, ब्रह्म व्यापक नामी है।
"भूः" अस्तित्व-निकन्द, "भुवः" चेतन स्वामी है ॥
"स्वः" आनन्दस्वरूप, जगत्-जदिता, "सविता" है।
"देव" दिव्व गुण रूप: "वरेण्यम्" वन्द्य पिता है ॥
उस "भर्ग" रूप भगवान का, ध्यान आज हम सब धरें।
प्रभुवर! प्रेरण गुरु ज्ञान का, बुद्धि हकारी मैं करें ॥

डा० सूर्य देव शर्मा

ओ३म्

ब्रह्मचर्य-खण्ड

कामाग्नि का परित्याग

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्न्यो दिव्यः ॥
रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन् ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषि ॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥

अथर्व० १६ । १ । १ । –४

अर्थ-(अपां) शरीर में व्याप्त वीर्य-रूप जलों का (वृषभः) बहाने वाला काम (अतिसृष्टः) मैंने परे हटा दिया है (दिव्याः) अद्भुत (अग्नयः) काम-अग्नियें (अतिसृष्टाः) मैंने परे हटा दी हैं वह काम (रुजन्) रोग करनेवाला है (परिरुजन्) बुरी तरह रोग करने वाला है (म्रणम्) मारने वाला है (प्रमृणन्) बुरी तरह मारने वाला है (म्रोकः) टेढ़ी चालें चलाता है (मनोहा) मानसिक शक्ति को नष्ट करता है (खनः) स्वास्थ्य आदि गुणों को खोद फेंकता है (निर्दाहः) जला देता है (आत्मदूषिः) आत्मा को मैला कर देता है (तनूदूषिः) शरीर को कान्तिहीन कर देता है, (इदं) यह (तं) उस काम को (अतिसृजामि) मैं परे फेंकता हूं (त) उस काम को (मा) अपने से (अभ्यवनिक्षि) मैंने जड़मूल से उखाड़कर परे फेंक दिया।

इन चारों मन्त्रों का भावार्थ बहुत स्पष्ट है। जिस प्रकरण के ये मन्त्र हैं वहां मनुष्य में समय-समय पर उठते रहने वाले कामविकार और उससे होने वाली हानियों का मार्मिक दिग्दर्शन कराके इस महा रोग से बचने के उपायों का वर्णन किया गया है। वहां से ये चार-मन्त्र पाठकों के विचारार्थ ऊपर दिये गये हैं। इन मन्त्रों में प्रदर्शित भाव को ही आगे सूक्त में पल्लवित किया गया-विस्तार से बताया गया है। वहां वीर्य के सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात बताई गई है। मन्त्र वीर्य को एक जल कहता है। परन्तु कैसा जल ? इसका उत्तर मन्त्र में प्रयुक्त वीर्य का नाम ही बता देता है। मन्त्र में वीर्य का नाम आया आया है-अपः। यह शब्द संस्कृत की धातु (Soot) "आप्लृ व्याप्तौ" से निष्पन्न होता है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ हुआ व्याप्त रहने-फैला रहने वाला। वीर्य मनुष्य के सारे शरीर में, उसके रक्त के एक-एक कण में, फैला रहता है। बहुत गहराई में न जाते हुए हम आयुर्वेद शास्त्र के आधार पर इस तत्व को जरा स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

पुरुष के अण्डकोष (Testicles) वीर्य का उत्पत्तिस्थान हैं। अण्डकोषों में उत्पन्न होने के पश्चात् वीर्य के दो मार्ग होते एक धारा से वीर्य शुक्र-कोश (Semenal Vesicles) नाम की एक थैली में, जो कि जननेन्द्रिय के मूल में मूत्राशय और शौचाशय के बीच में होता है, चला जाता है। शुक्रकोश में संगृहीत होने वाला वीर्य सन्तानोत्पत्ति के काम में आता है। दूसरी धारा से वीर्य पुरुष के रक्त में मिलता रहता है। इस रक्त में मिलते रहने वाले वीर्य का नाम 'औज' भी है। इसी 'औज' या रक्तगत वीर्य के कारण आदमी के शरीर में कान्ति आती है, बल और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की वृद्धि होती है, मस्तिष्क बढ़ता है, बल और उत्साह प्रकट होते हैं तथा शारी-

रिक और मानसिक फुर्तीलापन उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य का जीवन सर्वथा स्वाभाविक हो तो शुक्रकोश केवल सन्तानोत्पत्ति के समय ही खाली होना चाहिये। अन्त समयों में शुक्रकोश भरा रहेगा। शुक्रकोश भरा रहने की अवस्था में अण्डकोशों से इस में आने वाली वीर्य की धारा का प्रवाह भी बंद रहेगा और फलतः वीर्य सारा प्रवाह इसे रक्त में पहुंचाने वाली धारा में बहेगा। जिस का परिणाम यह होगा कि हमारे शरीर की कान्ति, अंग-प्रत्यंग, मस्तक बल, और उत्साह खूब वृद्धि करेंगे। पर हम अपने जीवन को स्वाभाविक नहीं रहते। हमारा खाना-पीना, रहन-सहन, वेष-भूषा और संगीत-चाहे वह व्यक्तियों की हो या पुस्तकों की ये सब इस प्रकार के होते हैं कि अहोरात्र-दिन रात में अनेक बार हमारे अन्दर कुवासनायें उत्पन्न होती हैं। जिसका फल यह होता है कि हम या तो जागते हुए ही जान बूझ कर अपना वीर्यपात कर लेते हैं या कुवासना-जन्य दुःस्वप्नों के कारण रात्रि में सोते हुए हमारा शुक्र बाहर हो जाता है। और इस प्रकार केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये ही शुक्रकोश खाली करने का हमारा स्वाभाविक क्रम हाथ से जाता रहता है। सन्तानोत्पत्ति के सिवा आगे-पीछे भी हमारा शुक्रकोश बहुत बार खाली होता रहता है। इसके खाली होते ही इसे भरने वाली वीर्य वाहिनी नाडियां अण्डकोषों में उत्पन्न वीर्य को खींच कर लाती हैं और इसे भरती हैं। जिसका फल यह होता है कि रक्त में जाने वाले वीर्य की मात्रा हो जाती है इस कमी का प्रभाव हमारे सारे शरीर और जीवन पर पड़ता है। हमारी कान्ति कम होने लगती है बल जाने और उत्साह तथा फुर्तीलापन घटने लगता है जब तक यह अस्वाभाविक प्रक्रिया (Unnatural Process) बहुत तेज नहीं होती तब तक हमें इससे होने वाली हानि का विशेष

अनुभव नहीं होता। पर इस अस्वाभाविक क्रिया (Unnatural Process) में-कुवासना-जन्य शृंगारित विचारों के सोचते रहने तथा उत्तेजना के बढ़ जाने पर उसे शान्त करने के लिये वीर्यपात कर देने में जो एक तामसिक आनन्द आता है वह हमें यहीं तक नहीं रहने देता। हम उस आनन्द को प्राप्त करने के लिये बार बार शृङ्गारित विचारों को सोचते हैं, इससे उत्पन्न होने वाली उत्तेजना (Irritation) को शान्त करने के लिये अपने शुक्र का पात करते हैं। यदि हमने स्वयं जान बूझ कर शुक्र का पात न किया और केवल शृङ्गारित विचारों के सोचने का आनन्द ही लेते रहे तो रात को स्वप्न में हमारा वीर्य जाता रहता है। पर इस मार्ग में चलने वाले व्यक्ति में इतना सामर्थ्य कहां कि वह रात को स्वप्नों तक ठहर सके? वह तो उसी समय, जागते-जागते, जान बूझ कर अपना नाश कर देता है। इस प्रकार यह अभ्यास बढ़ता जाता है। साथ ही इस मार्ग में चलने वाले को अपनी उत्तेजना को शान्त करने के लिये बीसियों तरह के वीर्यपात के तरीके सूझते जाते हैं। अवस्था यहां तक पहुंच जाती है कि अहोरात्र-दिन रात में न जाने कितनी बार इस प्रकार का व्यक्ति अपने आप को और कई बार दूसरों को भी नष्ट करता है। प्रति घण्टे एक एक और दो दो बार से भी अधिक बार अपना वीर्यपात करने वाले अभागे व्यक्ति देखे गये हैं। इस प्रकार जब यह अस्वाभाविक प्रक्रिया (Unnatural Process) बहुत बढ़ जाती है, शुक्रकोश बार बार खाली होने लगता है और इस रास्ते पर कदम रखने वाले की इस अस्वाभाविक प्रक्रिया का बहुत बढ़ जाना निश्चत है तो अण्डकोश को में उत्पन्न होने वाले वीर्य का सारा प्रवाह शुक्रकोश को भरने के लिये उसी की ओर हो जाता है। रक्त में वीर्य भेजने वाली धारा सर्वथा

बन्द हो जाती है। रक्त को 'ओज' न मिलने से हमारे देह की कान्ति जाती रहती है, अंग-प्रत्यंगों की वृद्धि रुक जाती है, मस्तिष्क निकम्मा हो जाता है, बल, उत्साह एवं शारीरिक और मानसिक फुर्तीलापन नष्ट हो जाता है। अन्त में अवस्था यहां तक पहुंचती हैं कि अण्डकोश वीर्य बनाना ही बन्द कर देते हैं, क्योंकि उन्हें भी 'ओजस्वी' रक्त से ही सामर्थ्य शक्ति मिलती थी। रक्त के निकम्मा हो जाने पर वे भी निकम्मे हो जाते हैं। ऐसे आदमी कीं अवस्था मरे हुए से भी बुरी हो जाती है। मरे हुए को कोई कष्ट नहीं सहना पड़ता। पर ऐसे आदमी को संसार का कौनसा क्लेश है जो प्राप्त नहीं होता। उसकी आत्मा के ऊपर एक भार असह्य होता है। जिसकी यंत्रणाओं का पूरा अनुभव वही अभागे कर सकते हैं जिन्होंने अपने कुकर्मों से अपने आपको ऐसा जीवन बिताने के लिये धिक्कृत (Cond) कर लिया है।

जहां उपर्युक्त दुर्दशामय जीवन का कारण हमारे शृङ्गारित विचार बहुत अधिक होते हैं वहां हमारा अस्वास्थ्य भी अनेक बार हमारे शुक्रकोश के खाली हो जाने का कारण होता है। बहुत थकावट, अति परिश्रम, बीमारी आदि से हो जाने वाली भारी कमजोरी से भी शुक्रपात कई बार होता देखा गया है। मूत्राशय और शौचाशय यथा समय खाली न हो कर भरे रहना वीर्यपात के लिये, विशेष कर रात को सोते हुए, बहुत सहायक है। वीर्यकोश (Semenal Vesicle) इन दोनों आशयओं के मध्य में होता है। इसलिए इनके भरे रहने से उस पर अनुचित दबाव पड़ता है और हमारे बेजाने वीर्य शुक्रकोश से बाहर हो जाता है। इसलिये कब्ज रहना और मूत्र को रोके रहना वीर्य की रक्षा के लिये बहुत घातक हैं। यदि हम इस प्रकार के अपने शरीर के अस्वास्थ्य को न हटायें

तो यह भी हमारी वीर्यहानि करता हुआ उसी प्रकार हमें कष्ट दे सकता है जिस प्रकार कि शृङ्गारित विचारों और विषयों में फंसे रहना पर इस से मनुष्य अपना बचाव चाहे तो आसानी से कर सकता है।

पर शृङ्गारित विचारों और विषयों में फंस कर मनुष्य का उद्धार हो सकना बहुत कठिन है। उधर से तो मनुष्य की रक्षा का उपाय यही है कि वह अपने मन को शुरू से ही उधर न जाने दे, उस रस की चाट उसे न लगने दे। रस लग जाने के बाद बड़ी मुश्किल से छुटकारा हो सकेगा और वह भी बड़ी हानि सहने के पीछे। इसीलिए इन मन्त्रों में हमें उपदेश दिया गया है कि मनुष्यों! तुम अपने अन्दर काम को शृङ्गारित विचारों, व्यवहारों और चेष्टाओं को ही उत्पन्न मत होने दो। इसे परे फेंक दो। तुम्हारे शरीर भर में फैला रहने वाला यह जो वीर्य है, जिसके कारण तुम्हारी कान्ति मस्तिष्क तथा बल बढ़ते हैं और सभी शक्तियें विकसित होती हैं, उसे काम की आग से पिघलने मत दो। इस आग को सदा बुझे रहने दो। अगर तुम ने आग से अपने वीर्य को पिगल कर बहने दिया तो याद रखो तुम्हारी बुरी हालत होगी। इस दुरवस्था का चित्र वेद ने कितना साफ खींचा है! तुम्हारी मानसिक शक्ती नष्ट हो जायगी, स्वाथ्य खोद कर फेंक दिया जायेगा, आत्म भ्रष्ट हो जायेगा शरीर सड़ जायेगा, तुम जल जाओगे, रोगों से जर्जरित हो जाओगे-मर जाओगे। अतः यदि कल्याण चाहते तो इस काम विकार को अपने से परे फेंक दो। वीर्य को कभी मत बहने दो। वीर्य को बाहर करने का एक ही तरीका है--"इद्रस्य व इन्द्रस्येणाभिषिञ्चेत्' (अथर्व० १६।।९) अपनी इन्द्रिय को इन्द्र की इन्द्रय बना कर वीर्य का सिंचन करो। इन्द्र (मेघ) बरसता है-जल धारा

छोड़ता है-वनस्पतियों और ओषधियों को अंकुरित करने के लिए! तुम भी वीर्य को बहाओ यदि किसी अपने जैसे प्राणी को अंकुरित करना है-जन्म देना है तो। अपने इन्द्रिय को इन्द्र का इन्द्रिय बनाने का एक भाव और भी हो सकता है इन्द्र परमात्मा को भी कहते हैं। हमें जननेन्द्रिय को अपना इन्द्रिय समझकर उससे जब चाहें मनमाना उपयोग नहीं लेना चाहिये। हमें अपने इन्द्रिय को भगवान को समझना चाहिये। उसे भगवान का इन्द्रिय समझ कर भगवान का कार्य करने के लिये ही उसका उपयोग करना चाहिये। जननेन्द्रिय प्रदान करने में भगवान का प्रयोजन यह है कि उसके द्वारा भगवान की बनाई सृष्टि आगे २ चलती रहे जब हम इन्द्र का काम करना चाहें अर्थात् जब हम सन्तति उत्पन्न करना चाहें तभी हमें अपनी जननेन्द्रिय का प्रयोग करके उसके द्वारा वीर्य का सेचन करना चाहिये। इसके सिवाय किसी और उद्देश्य से वीर्य बहाना मृत्यु का दरवाजा खोलना है।

सुनने वालो सुनो! वेद तुमसे पूछता है-सर्वनाश का मार्ग चुनोगे या सर्वकल्याण का? तुम्हारे हाथ में है, जो मार्ग चाहो चुन लो। यदि तुम्हें कल्याण का मार्ग पसन्द है तो वीर्य की रक्षा करो। उसे बहाना हो तो इन्द्र के मार्ग से बहाओ। और किसी उद्देश्य से इसे मत बाहर जाने दो। काम को शृङ्गारित विचारों और विषयों को परे फेंक दो। तुम्हारा कल्याण होगा। नहीं तो सर्वनाश का मार्ग तुम्हारे लिये विस्तृत पड़ा है। चुन लो जो चुनना है।

स्त्रियों में वीर्योत्पत्ति का प्रकार वह नहीं है जो कि पुरुषों में है। स्त्रियों के रक्त में 'ओज' किस प्रकार आता है इस नाजुक विषय में हम नहीं जाना चाहते। यहां इतना कह देना

पर्याप्त है कि कामवासनायें–शृंगारित विचार और विषय उनके शरीर, मन और आत्मा पर भी वैसा ही भीषण प्रभाव डालती हैं उन के जीवन का भी वैसा ही सर्वनाश कर देती हैं जैसा कि पुरुषों के जीवन का। अतः उन्हें भी इससे बचने के लिये अपने रहन–सहन, खान–पान और संगति को सात्विक और पवित्रता देने वाली बनाने में सदा यत्नशील रहना चाहिये। इसके बाद थोड़ा और भी सुनिये।

मानव जीनन को उन्नत बनाने के लिये ब्रह्मचर्य का आवश्यकता उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी सुदृढ़ भवन का निर्माण करने के लिये गहरी नींव की। जिस मकान की नींव गहरी नहीं होगी, वह भविष्य में आंधी, तूफान अथवा भूकम्प का तनिकसा झटका लगते ही धराशायी हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार जिस मनुष्य में ब्रह्मचर्य का अभाव है, वह कदापि उन्नतिशील नहीं हो सकता।

आध्यात्मिक अथवा राजनैतिक जितने भी महापुरुष अपने भारत में आज तक उत्पन्न हुए उन सभी की सफलता का रहस्य केवल ब्रह्मचर्य की रक्षा में ही है। देवता और मनुष्यों का तो कहना ही क्या असुर और राक्षसों ने भी शक्ति का संचय करने के लिये इस महाव्रत का अवलम्बन लिया था। हिरण्यकश्यप, रावण, मेघनाथ आदि असुरों ने ब्रह्मचर्य के बल पर ही अपनी तपस्या को सफल बनाया था। बाल ब्रह्मचारी भक्त हनुमानजी, भीष्मपितामह के पावन चरित्रों को कौन नहीं जानता। जगद्गुरु शंकराचार्य ने ब्रह्मचर्य के बल पर ही दिग्गज विद्वानों को परास्त कर जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त की थी।

आधुनिक युग में उत्पन्न आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य बल से कदाचित् कोई ही अपरिचत

होगा। महर्षिजो अपने प्रचार काल में एक बार लाहौर में ब्रह्मचर्य्य की महिमा का उपदेश कर रहे थे। ब्रह्मचर्य्य को आश्चर्यजनक शक्ति का प्रभाव सुनकर वहां के एक बैरिस्टर ने कहा, कि ये पुरानी बातें हैं, आप भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं आप ही कोई करामात दिखाइये। यह सुनकर स्वामीजी मौन हो गये। उन्हें मौन देखकर श्रोताओं को एक प्रकार को गम्भीर निराशा का अनुभव हुआ। सभा का कार्य्यक्रम समाप्त हो जाने पर जब वे बैरिस्टर अपने चार घोड़ों से जुती बग्गी में बैठकर जाने लगे तो स्वामीजी ने दौड़कर पीछे से उस गाड़ी को बलपूर्वक पकड़ लिया। सहस्त्रों नर-नारियों ने देखा कि साईस बारम्बार घोड़ों पर कोड़े फटकर रहा है, परन्तु घोड़ें अपने स्थान पर ही पैर पटक रहे हैं। जो जनता स्वामीजी के प्रति नैराश्य का अनुभव करने लगी थी, इस अपूर्व पराक्रम को देखकर मुक्तकण्ठ से स्वामीजी का जयघोष करने लगी। आश्चर्य्य से बैरिस्टर साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो अपने प्रश्न का ऐसा ही क्रियात्मक उत्तर पाकर भावावेश में स्वामीजी के चरणों में लिपट गये और अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगे।

जिस समय विष पान के कारण महर्षि अजमेर में मृत्युशय्या पर लेटे हुए थे मृत्यु आती थो और चली जाती थी क्योंकि महर्षि दयानन्द दीपावली के दिन प्राण त्याग करना चाहते थे। इसीलिये तो वेद में कहा है।

'ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुप घ्नत'। (अ० ११।५।१९) अर्थात् ब्रह्मचर्य्य के प्रताप से ही देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया।

महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य्य का महत्व इस प्रकार समझाया है:-देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य्य रहता है, तब उससे

आरोग्य बुद्धि, बल पराक्रम बढ़ने से बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से, ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, महाकुलक्षणी ....दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित होकर नष्ट हो ताता है।'

ब्रह्मचर्य है क्या ? ब्रह्मचर्य दो पदों से बनता है ब्रह्म + चर्य। ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु ब्रह्म के मुख्य अर्थ हैं, ईश्वर वेद, ज्ञान और वीर्य। इसी प्रकार चर्य के अर्थ होते हैं चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन, रक्षण। इस प्रकार ब्रह्मचर्य के निम्न अर्थ होते हैं (१) ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन और वीर्य-रक्षण।

ब्रह्मचर्य रक्षा ही जवीन है-वीर्य नाश ही मृत्यु है। सिंह जंगल का राजा होता हैं, वह निर्भय जंगल में अकेला ही घूमता फिरता है, उसकी गर्जना सुन कर वड़े बड़े शूरवीरों के छक्के जूट जाते हैं। शिकारी की गोली के भी वह आगे चलता है। जानते हो क्यों ? इसलिये की वह जीवन में एक बार ही ब्रह्मचर्य खण्डन करता है। इसके विपरीत हाथी इतना विशालकाय होते हुए भी कायर होता है, डर के कारण अकेला नहीं रहता-झुण्ड में रहता है। इतना नहीं यहां तक कि रात को सोते समय हाथियों के झुण्ड में से एक हाथी पहरा दिया करता है कि कहीं सिंह न आ जाये। और जहां सिंह की गर्जना सुनी सब तितर बितर हो जाते हैं। क्यों ? इसलिये कि वह बड़ा कामी होता है।

जिस प्रकार शक्तिशाली राजा के रहते हुये उसका देश धन धान्य, सुख शान्ति सम्पन्न तथा शत्रुओं से सुरक्षित रहता है परन्तु उसके निर्बल होते ही वही देश अनाथ, सुख विहीन हो जाता है, बाहर के शत्रु भी आक्रमण कर देते हैं और भीतरी चोर डाकू लूट खसोट मचाने लग जाते हैं। ठीक इसी प्रकार शरीर के राजा वीर्य के निर्बल पड़ जाने पर शरीर, इन्द्रियां, मन प्राण तथा बुद्धि सभी शिथिल और सुख विहीन हो जाते हैं, बाहर के रोग, भय आदि आक्रमण कर देते है और भीतर के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि लूट खसोट मचाने लगते हैं। अतः बस व्यक्ति का जीवन भारस्वरूप हो जाता है, अग्नि मन्द हो जाती है, प्रमेह स्वप्नदोष आदि रोग घेर लेते हैं आंखों की ज्योति कम हो जाती है, गाल पिचक जाते हैं, किसी कार्य में मन नहीं लगता।

जिस फुटबाल की हवा निकल जाये वह किसी काम की नहीं रहती, जिस गन्ने का रस निकल जायें उसमें तत्व नहीं रहता, जिस दूध का मक्खन निकल जाये वह सार हीन हो जाता है। ठीक इसी प्रकार जिस मनुष्य में वीर्य नहीं होता वह निस्तेज, निर्बल तथा मन्दबुद्धि हो जाता है।

यह वीर्य क्या होता है? मनुष्य चालीस दिन में जितना भोजन करता है, आयुर्वेद के मतानुसार यदि वह ठीक रूप से पच जाये तो एक सेर शुद्ध रक्त बनता है। एक सेर रक्त से दो तोला वीर्य बनता है। यदि इसका संचय किय जाय तो मनुष्य में ओज शक्ति बढ़ती है। एक बार के ब्रह्मचर्य खण्डन से एक मास की कमाई क्षण भर में नष्ट हो जाती है। जरा सोचो तो सही जिस वीर्य के खण्डन करने में इतना आनन्द आता है उसे अक्षुर रखने में कितना आनन्द आता होगा।

जिस प्रकार एक गाडीभर गुलाब के फूल एकत्रित किये जायें और उन फूलों का इत्र तैयार किया जय और इस इत्र की रूह नन्ही छः माशे की शीशी में बनाली जाय और यदि इस शीशी को कोई नाली में डाल दे तो उसकी मूर्खता ही होगी किन्तु इससे बढ़कर की मूर्खता हमारे देश के वे नवयुवक और बालक हैं जो वीर्य जैसे अमूल्य रत्न को जिसकी एक २ बूंद करके लाखों करोड़ों रुपयों से भी बढ़कर है, रात दिन अपने हाथों से हस्तमैथुन तथा गुदा मैथुन आदि अप्राकृतिक्र साधनों द्वारा गन्दी नाली में डालते रहते हैं यदि इसकी रक्षा करके उचित समय पर खर्च किया जाय तो हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द, गांधी और सुभाष जैसे देवताओं एवं महापुरुषों का नित्य जन्म होता रहे।

आप सब कुछ पढ़ चुके हैं, समझ चुके हैं। मैं समझता हूं कि आप पथप्रदर्शन से गिर न चुके होंगे, लेकिन इतिफाक आप सच्चे से भटक कर अपना अमूल्य जीवन बरबाद कर चुके हों आंखों के आगे अन्धेरा आता हो सिर चकराता हो, दिल धड़कता हो, पेट में गैस भर जाती है, कमर दर्द करती है, पिण्डलियां दर्द करती हैं, चेहरा सुर्ख की जगह सफेद या पीला हो गया है, खून की कमी है स्मरण शक्ति की कमी हैं। किसी कार्य में दिल नहीं लगता तथा जीवन सुख मय नहीं गुजर रहा हो तो कृपया आप हमसे मिलें और अपना दुःख प्रकट करें या हमको कहें तो हम नाड़ी देखकर सब कुछ बता देंगे इसके बाद हमारा इलाज कीजिये। ३५ वर्ष के अनुभव का लाभ प्राप्त कीजिये। निश्चय जानिये कि ईश्वर की कृपा से हमारी हमदर्दी, हमारी दवाईयों से आपका बिगड़ा हुआ जीवन बनेगा। तेज, बल, शक्ति का लबालब खजाना आपको मिलेगा, आप खुश होंगे, आपका परिवार आपका अच्छा शरीर देखकर आनन्द प्राप्त करेगा।

सफल जीवन

बन्धुवर, हम आपको क्या विश्वास दिलायें, केवल ईश्वर को साक्षी करके ये विश्वास दिलाते हैं कि हम सच्चे दिल, सच्ची लगन से अपने ३९ वर्ष के कठिन परिश्रम और ईश्वर कृपा से जो कुछ विद्या प्राप्त कर चुके हैं वो सब आपके दुख दूर करने और आनन्दमय जीवन बनाने के लिए सेवा रूप में अर्पण कर देंगे, हमारी सदा यह हार्दिक इच्छा रहेगी कि आप दुखी भाई हमारे पुरुषार्थ सेवा और ३९ वर्ष की अनुभव प्राप्त की हुई दवाईयों से पूर्ण स्वस्थ्य, पूर्ण ताकतवर, हर तरह से बलवान और तेजस्वी बनके अपना जीवन, अपने लिए, अपने परिवार के लिए, अपने धन्धे के लिए. अपनी हर तरह से उन्नति के लिए पूर्ण तरह से प्राप्त कर सको, और जो वक्त जीओ वो वक्त सदा सुखी रहो, समृद्धि रहो, आनन्दित रहो, हम आपकी सेवा को अपना सौभाग्य मानते हैं।

हमारे पास तीन प्रकार की दवाइयां रहती हैं:—

१. चालीस दिन की दवाइयां २५ रु० की हैं।

२. एक स्पेशल दवा एक मास के लिए ५० रु० की है।

३. महान् स्पेशल दवा २० दिन के लिए १०० रु० की है।

हर एक दवा में दो दवाइयां मालिश की रहती हैं, जो चाहो अपनी यथा शक्ति मंगाओ दिल खोलके खर्च करो, दिल खोलके लाभ प्राप्त करो।

सेवा में हम हैं आपके भाई:—

हकीम धीरूमल आर्य प्रेमी, वैद्य मोहनलाल आर्य प्रेमी
आर्यन फार्मेसी पोस्ट बाक्स नं० २७
फ़ोन नं० ४७२, नला बाजार, अजमेर।

आर्यन फ़ार्मेसी अजमेर का अनमोल रत्न

हमारा ४० दिन का कोर्स

क्या आप जानते हैं कि हमारे पूरे कोर्स में हर बीमारी को दूर करके तेज व शक्ति बढ़ाने की क्षमता है। आर्यन फार्मेसी अजमेर के ४० वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार औषधि के विषय में निम्नांकित जानकारी है:-

१- ४० दिन का कोर्स--यूनानी और आयुर्वेदिक दवाइयों का निचोड़ है।

२- हमारे ४० दिन के कोर्स अन्दर कम से कम ६ दवाइयां होती है।

१- ४० दिन के कोर्स की ६ दवाइयों में सुबह को १ पुड़िया रहती है जो मक्खन या दूध के साथ ली जाती है। इसमें मृगांग भस्म, मरजान भस्म, शिंगरफ भस्म, चांदी भस्म, सीमाव भस्म, सीप भस्म हैं। जिनमें से तबियत मुवाफ़िक ३ या ४ दवाइयां मिलाकर दी जाती हैं।

नं० २ दवा एक यूनानी या आयुर्वेदिक गोलियां जैसे गोली शिलाजीत या कोई और हैं जो कि पानी के साथ दोपहर को ली जाती हैं।

नं० ३ दवा एक चूरन है जिसमें मूसली, सालब मिश्री, कौंच, तालमखाना जैसी कई जड़ी बूटियां और उसके साथ सीप भस्म और फौलाद भस्म रहता है और खास २ गोलियां तबियत के अनुसार होती हैं, जो रात को दूध के साथ ली जाती हैं।

नं० ४ में २ दवाइयां मालिश की होती हैं। इसके अलावा दमा, बवासीर, भगंदर, खांसी, पेट दर्द, पेचिश, कमर का दर्द, घुटनों का दर्द हर प्रकार के दर्द, मीठा पेशाब, पुराना बुखार, हाथ पांव की जलन, कब्जियत के लिये इस कोर्स में

दवाइयां बदल कर दी जाती हैं। हमारे कोर्स की कीमत २५) रुपया है। ४० दिन की पूरी दवा और पूरा फायदा याने दिन प्रतिदिन दवा का मूल्य १० आना। जिसमें ६ दवाइयां आर्थात १ दवा की कीमत १० पैसा प्रतिदिन हुई और हमारा अनुभव है कि :--

'हमारा पूरा कोर्स'

४० दिन में हर बीमारी को दूर करके बल, शक्ति, तेज, नया व जीवन देता है।

मां बहिनों के लिये हमारे पूरे कोर्स का अलग कोर्स है जिसमें ४-५ दवाइयां रहती हैं जो कि प्रत्येक पुराने पेचीदे रोग को दूर करके शरीर को आरोग्य रखती हैं।

एक और सफाई -- हम हर एक मरीज़ को बिल्कुल अच्छी तरह देखते हैं और ईश्वर को साक्षी जानकर सत्य कह देते हैं कि रोग हम से दूर हो सकेगा या नहीं। ला इलाज जैसी दशा में हम कई भाइयों को साफ इन्कार भी कर देते हैं।

हमारा उद्देश्य है 'हर एक को बनाना बल्कि किसी को न बिगाड़ना"। देखने की कोई फीस नहीं। ४० दिन के कोर्स के कई प्रमाणपत्र भी हमारे कार्यालय में मौजूद हैं। लेकिन किसी का नाम प्रकट करना हम अपनी शान नहीं समझते। एकबार अवश्य ही हमें सेवा का अवसर दीजिये।

हकीम वीरूमल 'आर्य प्रेमी'

आर्यन फ़ार्मेसी, आर्य प्रेमी भवन, नला बाज़ार, अजमेर

डाक खर्च ३ रु०। आर्डर देते समय ५ रु० अवश्य भेजिए।

नोट--हमारे यहां हिंदी और सिंधी भाषा में "आर्य प्रेमी" मासिक पत्र निकलता है। पोस्टकार्ड लिखकर नमूने के लिए मुफ़्त मंगवाइये और दिल को बहलाइये।

इससे आ
चुका हूं । यह
आपको भेंट क
अगर आप सत
पुस्तक जो पि
पढ़कर आप

इस पुस्त
महाराज आच
के फूल" पुस्
विद्वान हैं । अ
यह छोटी सी

मैं आशा
पढ़कर अपना
और सफल ब

पीड़ा ह
रक्षा क
सब